RNI No.: MPHIN/2018/77137

ISSN 2582-483X

पाठशाला
भीतर और बाहर

अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय का प्रकाशन

वर्ष–4 अंक–12 जून 2022

तिमाही, भोपाल

जून, 2022 (वर्ष 4, अंक 12)

प्रकाशक
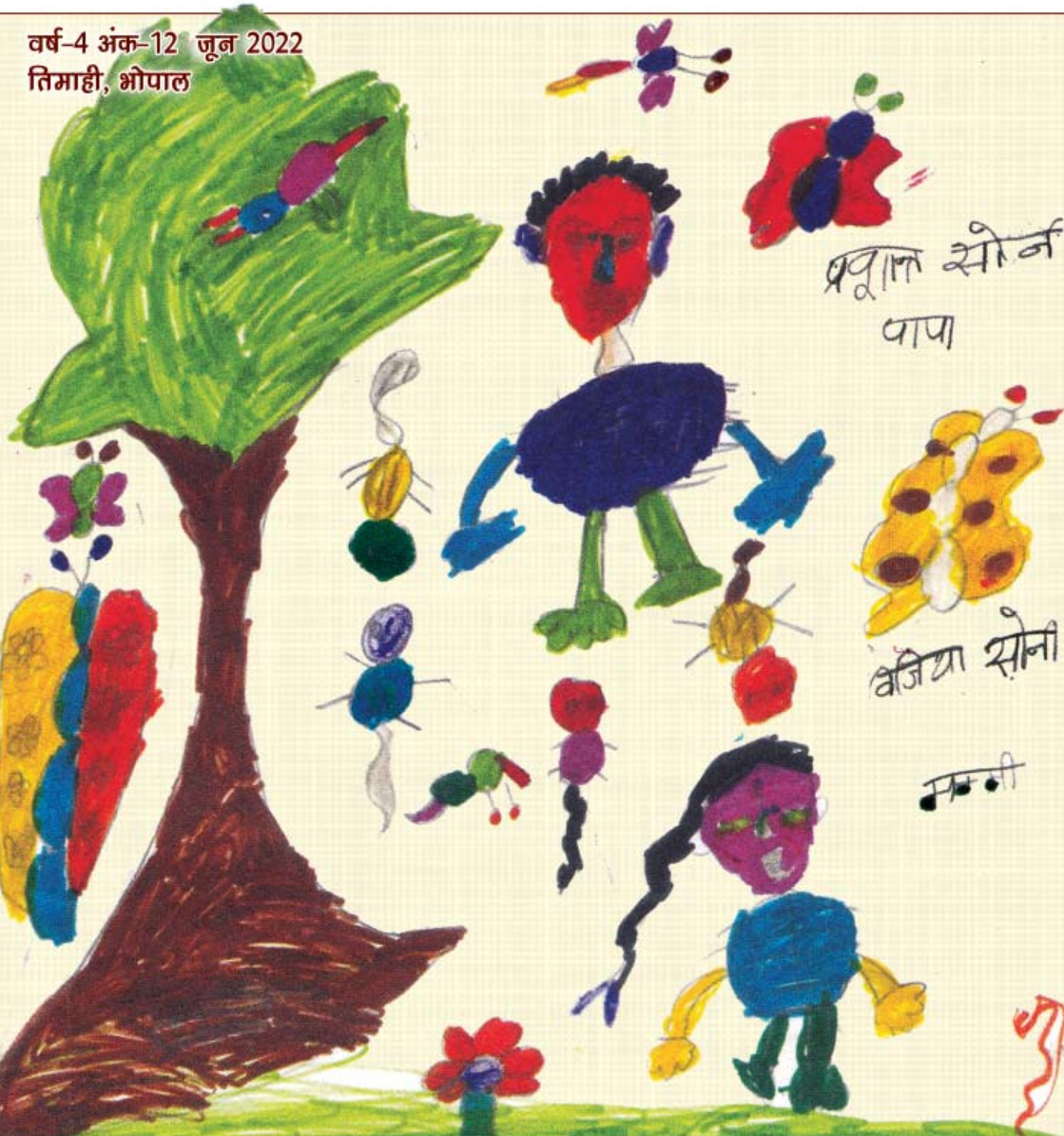
- **अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय**
  सर्वे नम्बर 66, बुरुगुंटे विलेज, बिक्कनाहल्ली मेन रोड,
  सरजापुरा, बैंगलूरु 562125 कर्नाटक
  Web: www.azimpremjiuniversity.edu.in

सम्पादकीय कार्यालय

- **सम्पादक**
  पाठशाला भीतर और बाहर
  अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन
  प्लाट नं. 163-164, त्रिलंगा कोऑपरेटिव
  सोसायटी, ई-8 एक्सटेंशन, त्रिलंगा,
  भोपाल, म.प्र. 462039 फोन-0755-4074060
  pathshala@apu.edu.in
  gurbachan.singh@azimpremjifoundation.org
  मो. 8226005057

डिज़ाइन एवं प्रिंट

- **गणेश ग्राफिक्स,**
  26-बी, देशबंधु परिसर,
  प्रेस काम्प्लेक्स,
  एम.पी.नगर, जोन-1
  भोपाल, म.प्र. 462011
  ganeshgroupbpl@gmail.com
  मो. 9981984888

पाठशाला भीतर और बाहर पत्रिका, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन का हिन्दी प्रकाशन है। यह शिक्षकों, शिक्षक प्रशिक्षकों, अन्य ज़मीनी कार्यकर्ताओं व शिक्षा से सरोकार रखने वाले सभी व्यक्तियों और संस्थाओं के लिए विचार-विमर्श का एक मंच है। पत्रिका का उद्देश्य शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत व्यक्तियों के अनुभवों व आवाज़ को जगह देकर शिक्षा के विमर्श को गहन व यथार्थपरक बनाना है।

अनुक्रम

सम्पादकीय

यह पत्रिका का 12वाँ अंक है, इसमें 16 लेख हैं। मीनू पालीवाल के लेख का शीर्षक है **अर्थ।** यह लेख समझकर पढ़ना सीखने के बारे में है। कई शोधों और लेखों में कहा गया है कि पढ़ना महज़ अक्षर, मात्रा पहचान पाना, और जो लिखा है उसको हूबहू उच्चारित करना नहीं है। लेकिन कक्षाओं में आज भी अकसर यही होता है। कक्षा के बच्चों के साथ पढ़ने को लेकर किए गए काम के आधार पर लेखिका बताती हैं कि जब बच्चे 'वास्तव' में पढ़ने लगते हैं तो वे पाठ की शुरुआत से ही अर्थ निर्माण में शामिल हो जाते हैं। वे अनुमान लगाते चलते हैं और जल्द ही पूरे सन्दर्भ को समझ जाते हैं और तब वे अक्षर-दर-अक्षर नहीं, बल्कि पूरे वाक्यों को पढ़ते हैं और उनमें जुड़ाव भी देख पाते हैं।

कक्षा में 'कन्यादान' कविता के हिस्सों को पढ़ना, इस लेख में शचीन्द्र आर्य कक्षा दसवीं की कविता 'कन्यादान' पढ़ाने के अपने अनुभव का विश्लेषण करते हैं। वे कहते हैं कि कविता तो एक ही है, फिर भी हर बार विद्यार्थियों के साथ इसे पढ़ने पर नए अनुभव सामने आते हैं। अपने अनुभवों के आधार पर विद्यार्थी कविता के अर्थ को खोलते हैं और हर बार उसमें एक नया अर्थ जुड़ जाता है। लेख दर्शाता है कि अर्थ गढ़ने में पाठक के सन्दर्भों व उनकी धारणाओं की भूमिका होती है, अतः गढ़े हुए अर्थ बताने की बजाय बच्चों से रचना पर चर्चा करना ज़रूरी है ताकि उन्हें सोचने और नया व अपना अर्थ गढ़ने के मौक़े मिलें। लेख यह भी बताता है कि अलग-अलग पाठक एक ही पाठ की फ़र्क़ लेकिन अर्थपूर्ण समझ रख सकते हैं, और कक्षा में अलग-अलग विद्यार्थियों द्वारा इस फ़र्क़ समझ को प्रस्तुत करना पाठ की गहराई को समझने में मददगार होता है।

स्कूल की भाषा बनाम बच्चे की भाषा, बच्चों से सीखना, इस लेख में महेश झरबड़े विभिन्न भाषाई पृष्ठभूमि के बच्चों के साथ भाषा सीखने-सिखाने के वाक़यों को रखते हैं। लेखक बताते हैं कि दो बिलकुल फ़र्क़ भाषा समुदायों के बच्चे एक दूसरे के साथ रहते हुए कुछ ही दिनों में एक दूसरे की भाषा सीख जाते हैं। भाषा सीखने-समझने की ये कोशिशें उन्हें एक दूसरे को, एक दूसरे की संस्कृति को समझने और एक दूसरे के प्रति संवेदनशीलता विकसित करने का भी ज़रिया बनती हैं। वे कहते हैं कि विभिन्न भाषाभाषी बच्चों के साथ काम करते हुए ज़रूरी है कि कक्षा में खुलापन हो, उन्हें अपनी भाषा बोलने की छूट हो और साथ ही लक्षित भाषा पर काम हो। खुलापन तब आता है जब हम शिक्षक बच्चों की भाषा सीखने में दिलचस्पी लेते हैं और उनसे उनकी भाषा सीखने की कोशिश करते हैं। ऐसा करते समय शिक्षक भी समझ पाते हैं कि बच्चों को भाषा सिखाते वक़्त उन्हें ख़ुद किन बातों का ध्यान रखना चाहिए।

नंदा शर्मा का लेख **'बुढ़िया की रोटी' कहानी का समाजशास्त्र**, कहानी सुनाने के बारे में है। लेखिका बच्चों के साथ 'बुढ़िया की रोटी' कहानी सुनाने के अनुभव को रखते हुए बताती हैं कि कहानी न केवल भाषा सीखने-सिखाने में महत्त्वपूर्ण हैं, बल्कि इनके ज़रिए सामाजिक व्यवहारों और सामाजिक मूल्यों पर भी सार्थक चर्चा हो सकती है। नंदा कहानी सुनने के बाद कहानी पर किए गए प्रश्नों पर बच्चों की प्रतिक्रिया के बारे में कहती है कि बच्चे न केवल विभिन्न सामाजिक मूल्यों की समझ रखते हैं वरन् मूल्यों की टकराहट भी समझते हैं। कहानी सुनाने के दौरान बच्चे विभिन्न चरित्रों को समझते हुए उनके द्वारा किए गए कार्य को अपने तर्कों से तोलते हैं और कहानी इस तरह की तार्किक तुलना करने का एक ज़रिया बनती है।

ऋषभ कुमार मिश्र के लेख का शीर्षक है **जाति के बारे में बच्चों का नज़रिया।** यह लेख 12 से 15 साल के बच्चों के साथ जाति विषय पर हुई बातचीत पर आधारित है। जाति को लेकर लेखक उन मान्यताओं को बताते हैं जो इस उम्र तक आते-आते बच्चों में बन चुकी होती हैं। स्कूल में, कक्षाओं में शिक्षक व कई विद्यार्थी अकसर इन मान्यताओं को अपने व्यवहारों व कथनों के ज़रिए जाने-अनजाने पोषित करते रहते हैं। ऋषभ ज़ोर देते हैं कि स्कूल और कक्षा प्रक्रियाएँ ऐसी हों जिनके माध्यम से बच्चों के साथ उनकी इन मान्यताओं पर सार्थक बातचीत हो पाए और उनपर प्रश्न भी किए जाएँ। स्कूली शिक्षा का एक लक्ष्य यह भी है कि वह समाज से हर तरह के भेदभाव को हटाने में मददगार बने। लेकिन ऐसा लगता है स्कूल जातियों के बीच भेदभाव को न केवल पुनरुत्पादित कर रहे हैं बल्कि करते ही रहे हैं।

बन्द-ए-महामारी और पढ़ना-लिखना सीखना, यह लेख बच्चों में हुए लर्निंग लॉस पर आधारित है और इसकी लेखिका श्रीदेवी हैं। यह लेख ख़ासकर छठवीं, सातवीं और आठवीं कक्षा के बच्चों के सन्दर्भ में है। लेखिका एक बैठक में शिक्षकों के साथ हुई बातचीत को साझा करती हैं। वे बताती हैं लगभग सभी शिक्षकों का कहना था कि छठवीं और सातवीं के कई बच्चे पढ़ने-लिखने से सम्बन्धित अपनी कई दक्षताएँ भूल चुके हैं। वे इस बारे में कुछ सुझाव भी रखती हैं कि इन बच्चों के साथ पढ़ने-लिखने की दक्षताओं पर उनके स्तर को ध्यान में रखते हुए कैसे काम किया जा सकता है। मसलन, जो बच्चे काफ़ी कुछ भूल चुके हैं उनके साथ सरल वाक्यों को पढ़ने-लिखने से शुरुआत करना, भाषा के साथ-साथ विज्ञान और सामाजिक विज्ञान की कक्षाओं में भी उनके साथ भाषाई दक्षताओं पर काम करना, आदि।

मंजु श्रीमाली के लेख **कहानी और फ़िल्मों की जुगलबन्दी से मानवीय मूल्यों को सींचना** के केन्द्र में मानवीय मूल्य और लेखन है। लेखिका मानवीय मूल्यों पर आयोजित एक सृजनात्मक प्रदर्शनी में ख़ुद के और बच्चों द्वारा की गई तैयारी के अनुभव रखती हैं। हर बच्चे को इस बात का उत्साह था कि वह प्रदर्शनी में भाग ले सकता है और सभी ने उसके लिए प्रयास भी किए। इन प्रयासों में बच्चों ने न केवल चयनित विषय पर अपने विचारों को प्रस्तुत करना, बल्कि आयोजन की तैयारी में अपनी और दूसरे बच्चों की भूमिका के बारे में भी सीखा। उन्हें यह एहसास भी हुआ कि वे भी इस तरह के आयोजनों में सार्थक योगदान दे सकते हैं।

अपने लेख **सिर्फ़ मेला नहीं विज्ञान भी : आसपास के जन मुद्दे भी शामिल** में, माया मौर्य स्कूल में आयोजित विज्ञान मेले के अनुभव प्रस्तुत करती हैं। उन्होंने इस मेले में प्राथमिक कक्षाओं को भी शामिल किया। प्राथमिक और उच्च प्राथमिक स्तर के बच्चों ने अलग-अलग विषयवस्तुओं पर काम किया। इस लेख में आप बच्चों की तैयारी, लोगों के सामने अपनी बात कहने की उनकी हिचक और उससे पार पाना, अभिभावकों की बच्चों के काम को लेकर और शिक्षकों की इस कोशिश को लेकर प्रतिक्रियाएँ भी पढ़ेंगे।

अलका तिवारी का लेख **बच्चे और विज्ञान मेला : एक अनुभव** भी स्कूल द्वारा आयोजित किए गए विज्ञान मेले पर है। इस लेख में बच्चों द्वारा की गई मेले की तैयारी, उस दौरान अपने स्टॉल के लिए प्रयोग और मॉडल चुनना, आगन्तुक बच्चों व अभिभावकों से बातचीत की तैयारी, उस तैयारी के अनुभव, पूरी प्रक्रिया के दौरान पाए अवलोकनों, आदि सभी पर चर्चा है। इसके अलावा लेख में बच्चों के ख़ुद के शब्दों में लिखे मेले के अनुभव और प्रदर्शनी देखने आए लोगों के साथ अन्तःक्रिया के अनुभव भी साझा किए गए है। लेखिका बताती हैं कि हालाँकि इस तरह के आयोजन वर्ष में एक बार ही होते हैं लेकिन इनकी तैयारी के दौरान बच्चे ख़ुद से बहुत कुछ सीखते हैं, मसलन, प्रयोगों को स्वयं और बार-बार करके देखना, उनके बारे में पूछे जाने वाले प्रश्नों को सोचना, उनकी तैयारी करना, आदि।

लेख **सोचने और सक्रिय होने का तरीक़ा है विज्ञान** की लेखिका हैं सुरभि चावला। उन्होंने विज्ञान सीखने के उद्देश्यों के मद्देनज़र विज्ञान की तीन अलग कक्षाओं के अवलोकनों का विश्लेषण किया है। लेख में दिए अवलोकन काफ़ी स्पष्टता से दर्शाते हैं कि एक अच्छी विज्ञान की कक्षा किसे कहा जाए, और क्यों? साथ ही ये अवलोकन यह भी बताते हैं कि ऐसी कक्षा, जिसमें महज़ तथ्यों को रटवा दिया जाए, अच्छी विज्ञान की कक्षा क्यों नहीं है? लेखिका कहती हैं, बच्चे सही मायने में विज्ञान सीखें इसके लिए ज़रूरी है कि उन्हें पाठ्यपुस्तकों में दिए गए तथ्यों को रटवाने की बजाय अपने आसपास से जुड़ने, और जो जानकारी वे रखते हैं उसे अभिव्यक्त व बेहतर करने के पर्याप्त मौक़े दिए जाएँ।

सुधीर श्रीवास्तव का लेख **मातृभाषा और गणित शिक्षण,** गणित सीखने और इसमें मातृभाषा की अहम भूमिका पर केन्द्रित है। लेखक तीसरी कक्षा के बच्चों के साथ वृत्त की अवधारणा पर बात करने के अपने अनुभव को बयाँ करते हैं। लेख दर्शाता है कि मातृभाषा सीखने-सिखाने का माध्यम बन सकती है। मातृभाषा में बातचीत बच्चों को अपने अनुभवों के बारे में सोचने, उन्हें अभिव्यक्त करने और उनपर चर्चा करने के लिए उत्साहित एवं प्रोत्साहित करती है। बच्चों का यह उत्साह आगे सीखने में मददगार होता है। लेखक कहते हैं कि गणित सीखने से भाषा का जो गहरा रिश्ता है उसे अकसर कक्षा में नज़रअन्दाज़ कर

दिया जाता है। मातृभाषा के उपयोग का अभाव बच्चों व शिक्षक के बीच की दूरी, बच्चों के गणितीय ज्ञान और समझ की नज़र अंदाज़ी, वस्तुओं के बारीक़ अवलोकन की जगह न होना, जैसे बिन्दु भी इस कक्षा प्रक्रिया में गुँथे दिखते हैं। लेख बच्चों को जल्दी सिखाने के प्रयासों की कमियों को भी उजागर करता है।

साक्षात्कार स्तम्भ में शिक्षिका मीनाक्षीजी से बातचीत है। वे बताती हैं कि अकसर लड़कियों को पढ़ने के लिए लम्बा समय नहीं मिल पाता, इस वजह से उनके लिए ऐसे पेशे चुनना मुश्किल होता है जिनमें पढ़ाई की अवधि लम्बी होती है। मीनाक्षीजी द्वारा शिक्षकीय पेशे को चुनने की वजह भी यही थी। लेकिन धीरे-धीरे उन्हें एहसास हुआ कि समाज से जुड़ने, समाज के लिए कुछ करने की उनकी इच्छा को पूरा करने के लिए इससे बेहतर कोई और पेशा नहीं हो सकता था। महिला शिक्षक होने की चुनौतियों, सीखने-सिखाने में बच्चों की क्षमता, उनके स्वभाव की समझ, शिक्षा क्यों ज़रूरी है, आदि सभी बिन्दुओं पर काफ़ी गहराई से वे अपनी बात रखती हैं।

इस बार के **संवाद** के केन्द्र में 'लर्निंग लॉस' है। विभिन्न राज्यों की शिक्षिकाओं और अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन के सदस्यों ने इस सन्दर्भ में अपने स्कूलों के अनुभव इस मंच पर साझा किए हैं। एक लम्बे समय के बाद स्कूली शिक्षा से फिर से जुड़ने में शिक्षकों और बच्चों के सामने आ रही चुनौतियों, किए जा रहे प्रयासों, इन प्रयासों में बच्चों के सीखने की दिख रही सम्भावनाओं, अतिरिक्त प्रयास करने की ज़रूरतों, आदि पर विस्तार से चर्चा की गई है।

पुस्तक समीक्षा के अन्तर्गत इस बार श्याम नारायण मिश्र द्वारा लिखी गई किताब *अध्यापकीय जीवन का गुणनफल* की समीक्षा की गई है। यह समीक्षा अनिल सिंह ने की है। किताब आज़ादी के आरम्भिक दशकों में शिक्षा, स्कूल और शिक्षक की स्थिति की एक तस्वीर सामने रखती है।

पाठक चश्मा खण्ड में *पाठशाला* के लेखों के बारे में पाठकों के विचार शामिल किए गए हैं।

पाठशाला का 14वाँ अंक सामाजिक विज्ञान सीखने-सिखाने पर केन्द्रित होगा। इस अंक हेतु कक्षा में किए गए काम पर आधारित विश्लेषणपरक अनुभव तो आमंत्रित हैं ही, साथ ही सामाजिक विज्ञान को कैसे समझें, कक्षा प्रक्रियाओं के साथ-साथ स्कूल की प्रक्रियाओं में यह कैसे झलकता है, स्कूल में सामाजिक विज्ञान शिक्षण की जगह कहाँ-कहाँ बनती है, जैसे विषयों पर भी लिखा जा सकता है।

नई शिक्षा नीति 2020 विषयों की चारदीवारी को तोड़ने की ज़रूरत को उजागर करती है। यह सुझाती है कि बुनियादी दक्षताएँ विकसित करने, मसलन, मौखिक और लिखित संवाद, तार्किक चिन्तन और समस्या समाधान, कला के प्रति रुचि और उसकी सराहना, नीतिपरक चिन्तन, समसामयिक मुद्दों का संज्ञान, उनपर विमर्श, आदि का ज़रिया सभी विषय बन सकते हैं। यह हो पाए, इसके लिए कोशिश की जानी चाहिए। इस परिप्रेक्ष्य के तहत सामाजिक विज्ञान शिक्षण में क्या-क्या किया जा सकता है और यदि किया गया है तो उसके अनुभव क्या रहे हैं, इसपर भी लिखा जा सकता है।

सामाजिक विज्ञान पर केन्द्रित इस अंक के लिए आप सितम्बर 2022 तक अपने लेख हमें भेज सकते हैं। आशा है कि इस बारहवें अंक में प्रस्तुत लेख पाठकों के लिए सार्थक व उपयोगी होंगे। जैसा हम कहते आए हैं, लेखों पर अपनी टिप्पणियों व प्रतिक्रियाओं को हमसे ज़रूर साझा करें। साथ ही, यदि आपको लगता है कि स्कूल शिक्षा से सम्बन्धित किसी ख़ास विषय पर इस पत्रिका के लेखों द्वारा चर्चा हो सकती है तो वह विषय भी आप सुझा सकते हैं।

इसके अलावा *पाठशाला* सभी के मनन, चिन्तन व विश्लेषण की प्रस्तुति के लिए है। आपके भी शिक्षण कार्य के दौरान कुछ अनुभव होंगे जो शिक्षा के बारे में कुछ पहलू नए ढंग से रखते हों। अतः आप भी स्कूल, कक्षा, और समाज व शिक्षा से सम्बन्धित पहलुओं पर अपने अनुभव ज़रूर लिखें और *पाठशाला* के साथ साझा करें।

सम्पादक मण्डल

जाति के बारे में बच्चों का नज़रिया

ऋषभ कुमार मिश्र

इस लेख में 12 से 15 वर्ष के बच्चों से जाति के मुद्दे पर हुई बातचीत को प्रस्तुत किया गया है। इस बातचीत के आधार पर लेखक बताते हैं कि शिक्षा द्वारा जातिगत भेदभाव को बढ़ावा देने वाले विभिन्न व्यवहार और समझ कैसे पुनरुत्पादित होती जाती है। वे यह भी बताते हैं कि वयस्क और शिक्षक इन बातों को जाने-अनजाने पोषित ही करते हैं। स्कूल का एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य यह है कि वे शिक्षा को समावेशी बनाएँ और विद्यार्थियों को चिन्तनशील व तार्किक, लेकिन स्कूल ऐसा कर पाने में सक्षम नहीं हो पा रहे हैं। सं.

हमारे समाज में जाति, सामाजिक अस्मिता को परिभाषित करने वाला एक प्रमुख चर है। इसका प्रभाव सार्वजनिक अन्तःक्रियाओं, चाहे बाज़ार, पंचायत या स्कूल हो, में हर जगह देखा जा सकता है। हम अपने आसपास की दैनिक गतिविधियों का अवलोकन करें तो पाएँगे कि लोग जिस जाति से सम्बन्धित होते हैं, उसकी पहचान को लेकर सचेत होते हैं। वास्तव में, वे अपनी जातीय अस्मिता के वाहक होते हैं। वे न केवल इसके द्वारा पहचाने जाते हैं बल्कि स्वयं इस पहचान का दावा भी करते हैं। इनका प्रभाव हमारी आम ज़िन्दगी पर इतना गहरा है कि रोज़मर्रा के कार्यों के दौरान जब अलग-अलग जातीय समूहों के लोग आपस में मिलते-जुलते हैं तो वे एक दूसरे की इस सामूहिक अस्मिता के बारे में जानने के लिए उतावले रहते हैं। किसी समूह के विषय, उनके विश्वास और मत के आधारों में 'जाति' एक महत्त्वपूर्ण आधार होती है।

जातीय अस्मिता की एक विशेषता इनमें व्याप्त ऊँच-नीच (हायरार्की) का भाव है। अमूमन ऐसा होता है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने जातीय समूह को बेहतर मानता है और अन्य समूहों के बारे में पूर्वाग्रहों और रूढ़ियों के आधार पर अपनी श्रेष्ठता पर विश्वास करता है। इस प्रवृत्ति के कारण जाति, विभेद का एक बड़ा कारक बन जाती है और अकसर एक दूसरे के बारे में नकारात्मक छवियों का प्रसार करने का माध्यम भी। परिवार, समुदाय और जनसंचार के माध्यमों द्वारा जाति से जुड़े पूर्वाग्रहों और रूढ़ियों को पुनर्बलन भी मिलता है। और इन सबके परिणामस्वरूप आपसी अन्तःक्रियाओं के बीच अविश्वास, विद्वेष, पूर्वाग्रह, शोषण और वर्चस्व जैसी नकारात्मक प्रवृत्तियों को भी पोषण मिलने लगता है।

जाति-आधारित ये नकारात्मक प्रवृत्तियाँ न चाहते हुए भी वयस्कों के जीवन का हिस्सा बन जाती हैं। ऐसा कह सकते हैं कि कुछ हद तक शुरुआती उम्र में बच्चों के बीच इसको लेकर कोई भेदभाव नहीं होता है, और वे एक दूसरे को दोस्त या हमउम्र साथी मानकर अन्तःक्रिया करते हैं। हम यह भी कह सकते हैं कि बच्चे पढ़ते, खेलते या अन्य क्रियाकलाप करते हुए जातीय अस्मिता से अप्रभावित रहते हैं और यह भी कि स्कूल, किताबों, कक्षा शिक्षण आदि के द्वारा जाति के आधार पर भेदभाव को समाप्त

करने का प्रयत्न किया जा रहा है, लेकिन वास्तविकता यह है कि बच्चे अपने परिवार से लेकर विद्यालय और समुदाय तक जाति के विविध अनुभवों के भागीदार बनते हैं। वे अपने परिवेश में जाति की व्याप्त समझ और उसपर आधारित सामाजिक अन्तःक्रियाओं के पैटर्न से जूझते रहते हैं। साथ ही स्कूलों में 'न दिखने वाली पाठ्यचर्या' भी इस विभेद को बनाने का काम करती है और इस तरह इसको क़ायम भी रखती है। हालाँकि सतही तौर पर स्कूल, किताबों, कक्षा शिक्षण आदि के द्वारा जाति के

चित्र : हीरा धुर्वे

आधार पर भेदभाव को समाप्त करने का प्रयत्न किया जाता रहा है किन्तु गहराई से परखने पर जाति विभेद की लकीरें साफ़ नज़र आती हैं। इस पृष्ठभूमि में यह लेख चर्चा करता है कि सामाजिक अस्मिता के एक चर के रूप में बच्चे जाति को कैसे समझते हैं? बच्चों की सामाजिक दुनिया जाति-आधारित भेद को कैसे पुनरुत्पादित और मज़बूत कर रही है? इन प्रश्नों की पड़ताल के लिए ग्रामीण परिवेश के तीन विद्यालयों के विद्यार्थियों के साथ समूह चर्चा की गई। 6 से 8 बच्चों के प्रत्येक समूह में 12 से 15 वर्ष के बच्चे शामिल थे। जाति की दृष्टि से देखें तो ये तीनों समूह मिश्रित प्रकार के थे, जिनमें अलग-अलग स्थानीय जातियों के बच्चे शामिल थे। एक अर्द्ध-संरचित प्रश्नावली के माध्यम से इन तीनों ही समूहों के साथ उपरोक्त प्रश्नों के सन्दर्भ में चर्चा का आयोजन किया गया। इन केन्द्रित समूह चर्चाओं को इस लेख में प्रस्तुत किया गया है।

विभेद-आधारित जातीय अस्मिताओं की निरन्तरता

केन्द्रित समूह चर्चा के भागीदार विद्यार्थी 'जाति' की अवधारणा से भली-भाँति परिचित थे। समूह चर्चा का आरम्भ इस सवाल के साथ किया गया कि आप लोग जाति के बारे में क्या जानते हैं। विद्यार्थियों ने सवाल सुनते ही जातियों के नाम गिना दिए। उदाहरण के लिए :

विद्यार्थी 1 : "ब्राह्मण, क्षत्रिय, तेली, हरिजन।"

विद्यार्थी 2 : "मिश्रा, त्रिपाठी, यादव, वर्मा।"

विद्यार्थी 3 : "सिंह, राय, शुक्ला, पटेल, यादव।"

यहाँ देख सकते हैं कि विद्यार्थियों ने वर्ण व्यवस्था के प्रचलित वर्गों— ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र को जाति नहीं बताया, बल्कि उन जाति-संज्ञाओं का प्रयोग किया जो स्थानीय समुदाय में प्रचलित थीं। बच्चों ने इन जाति-संज्ञाओं को एक दूसरे से पूर्णतया भिन्न जातीय समुदायों का प्रतिनिधित्व माना है। उनके विचारों में जातियों के बीच भेद को स्वाभाविक मानने की प्रवृत्ति दिखती है। वे जातीय समूहों की ऐतिहासिक निरन्तरता की ओर संकेत करते हैं। इसे निम्नलिखित उद्धरणों द्वारा समझा जा सकता है :

विद्यार्थी 1 : "जाति व्यवस्था पुराने जमाने से है।"

शिक्षक : "कब से?"

विद्यार्थी 1 : "जब से मनुष्य है। इसे मनुष्य ने ही बनाया है।"

विद्यार्थी 1 : "सबकी जाति होती है।"

विद्यार्थी 2 : "जो जिस परिवार में पैदा होता है, उसकी जाति वही होती है।"

विद्यार्थी 3 : "जाति के बिना कोई इंसान नहीं हो सकता है।"

उपर्युक्त कथनों में देख सकते हैं कि विद्यार्थियों में जाति को लेकर निश्चयात्मक और दृढ़तावादी सोच है। यह सोच जाति-आधारित विभाजन को वैध बनाती है। इस सन्दर्भ में उच्च जाति वर्ग के समूह के एक भागीदार का कथन देखिए : “पहले सभी जातियाँ अलग-अलग रहती थीं। इसी कारण गाँव में आज भी अलग-अलग जातियों के अलग-अलग पुरवे हैं।” इस समूह के विद्यार्थी इसके समर्थन में तर्क देते हैं कि इससे एक जाति के लोगों को अपने लोगों के साथ रहने का मौक़ा मिलता है। वे बताते हैं, ‘मौक़ा’ पड़ने पर लोग एक दूसरे का सहयोग करते हैं। दूसरी जातियों से भी सहयोग मिलता है लेकिन उसकी प्रकृति अलग होती है। यह सहयोग तब माँगा जाता है जब अपनी जाति के लोगों से कोई ज़रूरत पूरी नहीं हो पाती है।” इस तरह के विचार अपने समूह से सम्बद्धता का उदाहरण हैं जहाँ सामाजिक सम्बन्धों में अपने समूह के सदस्यों को वरीयता दी जाती है। समूह से सम्बद्धता का यह भाव आगे चलकर जाति के मानकों को स्वीकार करने, उसे वैध मानने और उसके अनुकूल व्यवहार करने की ‘आदत’ को जन्म देता है। इसके प्रभाव में भागीदार एक ‘अस्वाभाविक’ संरचना को ‘स्वाभाविक’ मानने लगता है।

‘शुद्धता और विशिष्टता’ का बोध

जातियों के रीति-रिवाज और कर्मकाण्ड ‘शुद्धता और विशिष्टता’ के बोध को जन्म देते हैं। ये जातीय विभेद के सबसे कारगर उपकरण होते हैं। इसका सबसे अच्छा उदाहरण निम्नलिखित उद्धरणों में देख सकते हैं– “ब्राह्मण पूजा करते हैं” और “ब्राह्मण जनेऊ पहनता है, इसलिए पूजा करता है।” उल्लेखनीय है कि विद्यार्थियों द्वारा केवल इसी जाति से सम्बन्धित रीति-रिवाजों का उल्लेख किया गया। इसका पहला कारण यह है कि वे अपने परिवेश में सर्वाधिक इन्हीं प्रवृत्तियों का उल्लेख पाते हैं। दूसरा, मिश्रित समूह की सार्वजनिक चर्चा में केवल ऊँची जाति की ‘प्रस्तुति’ एक स्वाभाविक चलन है जिसका सतत पुनरुत्पादन हो रहा है। इस चर्चा के दौरान एक विद्यार्थी ने अपना व्यक्तिगत अनुभव साझा किया– “मैंने पापा से पूछा कि मोनू के पापा पूजा नहीं करते तो वे ब्राह्मण कैसे हुए। मेरे पिता ने बताया कि वे जनेऊ पहनते हैं।” यह भी अवलोकनीय रहा कि इस बिन्दु पर चर्चा के दौरान केवल ब्राह्मण या अन्य ऊँची जाति के विद्यार्थी ही बोल रहे थे। शिक्षा संस्थानों में, जहाँ इस विषय पर आलोचनात्मक चिन्तन की गुंजाइश थी, वहाँ इस विभेद को मज़बूत किया जाता है। मसलन, एक
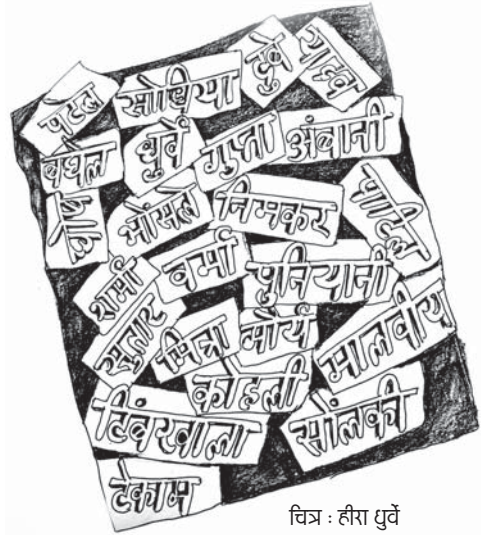
चित्र : हीरा धुर्वे

विद्यार्थी ने साझा किया कि चूँकि वह ब्राह्मण है इसलिए बहुत सारे अध्यापक उसे पैर छूकर प्रणाम नहीं करने देते हैं। जबकि दूसरी जाति के विद्यार्थियों के द्वारा ऐसा किए जाने पर वे मना नहीं करते हैं।

जाति-आधारित विभाजन को उचित ठहराते हुए भागीदार विद्यार्थियों ने अपनी ही जाति में शादी करने का पक्ष भी लिया। इसके समर्थन में परिवार और समुदाय का सहयोग और स्वीकृति का तर्क था। यह उल्लेखनीय है कि सभी जाति समूहों के विद्यार्थियों ने दूसरी जाति में शादी न करने के कारणों में अपने-अपने समुदायों में

सामाजिक बहिष्करण के उदाहरणों को साझा किया। इसके समान्तर ही वे दूसरी जाति में शादी के दुष्परिणामों की चर्चा जनसंचार माध्यमों के उदाहरण से करते हैं। वे बताते हैं, "जो युवा दूसरी जातियों में शादी करते हैं। उन्हें मार दिया जाता है।" और "उन्हें पुलिस और थाने के चक्कर लगाने पड़ते हैं।" विद्यार्थियों की ये प्रतिक्रियाएँ अस्वाभाविक नहीं हैं बल्कि वे अपने इस फ़ैसले से जातीय समूह की विशिष्टता को क़ायम रखना चाहते हैं।

चित्र : हीरा धुर्वे

श्रेष्ठता और हीनता के द्वन्द्व के बीच प्रतिरोध

विद्यार्थियों के विचार जातीय अस्मिता के आधार पर स्वयं को श्रेष्ठ और अन्य को हीन मानने का भी प्रमाण देते हैं। हमारे सामाजिक ताने-बाने में उच्च जातियाँ उच्च आत्म-सम्मान (सेल्फ़-एस्टीम) और उच्च आत्म-प्रभावकारिता (सेल्फ़-एफ़िकेसी) को धारण करती हैं जबकि दूसरे समूहों के साथ इसके विपरीत स्थिति होती है। इसी प्रवृत्ति का अवलोकन समूह चर्चाओं के दौरान भी किया गया। मसलन, पूरी समूह चर्चा के दौरान उच्च जाति के विद्यार्थी अपनी जातीय संज्ञाओं का उल्लेख करने में झिझक नहीं रहे थे जबकि 'अन्य' मौन थे। यह 'मौन' कमज़ोर आत्म-सम्मान (लो सेल्फ़-एस्टीम) और कमज़ोर आत्म-प्रभावकारिता (लो सेल्फ़-एफ़िकेसी) को दर्शाता है। इस 'कमज़ोर' अस्मिता के प्रतिरोधस्वरूप इस समूह के बच्चे अन्य पिछड़ा वर्ग और अनुसूचित जाति जैसी संज्ञाओं का प्रयोग करते हैं। स्वातंत्र्योत्तर भारत में जातीय अस्मिता की ये 'पहचानें' बदलाव, गतिशीलता और प्रतिरोध की प्रतिनिधि हैं और इनके प्रयोग से वे ख़ुद को अपेक्षाकृत मज़बूत जातीय समूह का प्रतिनिधि मानते हैं। फिर भी, इस संवैधानिक मज़बूती को सामाजिक-सांस्कृतिक-आर्थिक धरातल पर ख़ारिज कर दिया जाता है। मसलन, विद्यार्थी जातियों की आर्थिक स्थिति में भिन्नता का भी प्रत्यक्षण करते हैं। चर्चा में शामिल बच्चों ने उच्च जातियों को अमीर और निम्न जातियों को ग़रीब बताया। इसके लिए उन्होंने अपने गाँव से उदाहरण दिए। इसके लिए खेत, रोज़गार, गाड़ी और घर जैसे संसाधनों को आधार बनाया। यह भी जोड़ा कि सरकार निम्न जाति के लोगों को घर, अनाज आदि की सुविधा प्रदान कराती है। इन सुविधाओं को 'ग़रीब' की बजाय जातीय संज्ञा के प्रयोग द्वारा समझाया। इसके साथ ही विद्यार्थियों ने साझा किया कि कुछ निम्न जाति के लोग जो सरकारी नौकरी में हैं, उनके पास पक्का घर और गाड़ी है। क्या इन सुविधाओं का होना किसी भी व्यक्ति को जाति-आधारित पायदान में ऊपर पहुँचा सकता है? इस सवाल के बारे में पुनः विद्यार्थियों की निश्चयात्मक सोच थी जिसके अनुसार, "नौकरी या घर से जाति नहीं बदलती।" जाति के न बदलने और उनमें पदानुक्रम होने की सहमति से जुड़े कुछ और भी विचार प्रकाश में आए। मसलन, खेती की ज़मीन की अधिकता के सन्दर्भ में विद्यार्थियों ने ऊँची जातियों का ही उदाहरण दिया :

"ब्राह्मण अमीर और ग़रीब हो सकता है। जिसके पास खेत है और पढ़ाई की है वह अमीर होगा, नहीं तो ग़रीब होगा। फिर भी उसका सम्मान होता है।"

"बनिया ज़्यादातर अमीर होते हैं।"

"राजपूत भी अमीर होते हैं। मेरे गाँव में

राजपूत लोगों के पास खेत, गाड़ी और नौकरी है। उनके बच्चे शहर के अँग्रेज़ी स्कूल में पढ़ने जाते हैं।”

विद्यार्थियों के ये विचार प्रमाण हैं कि विद्यार्थी जातीय श्रेष्ठता और हीनता के लिए आर्थिक संसाधनों को आधार मान रहे हैं। फिर भी, ‘आर्थिक हैसियत’ में बदलाव के बावजूद जाति-आधारित हायरार्की को वे स्थाई मानते हैं। इसे विद्यार्थियों ने विविध सामाजिक-राजनीतिक क्षेत्रों में चिह्नित किया है :

शिक्षक : “ये बताओ कि क्या सब जातियाँ बराबर होती हैं?”

विद्यार्थी 1 : “नहीं।”

विद्यार्थी 2 : “ब्राह्मण सबसे ऊपर हैं और मुसहर सबसे नीचे हैं।”

शिक्षक : “अच्छा तो ये क्यों है?”

विद्यार्थी 1 : “पता नहीं...”

विद्यार्थी 3 : “घर में बताया गया है।”

विद्यार्थी 4 : “कक्षा में भी देखा है।”

विद्यार्थी 5 : “जैसे मुझे अभी भी बहुत सारे टीचर पैर छूकर प्रणाम करने नहीं देते हैं।”

शिक्षक : “क्या आपको इसका कारण पता है?”

विद्यार्थी 5 : “मुझे नहीं पता था कि इसका तर्क क्या है।”

विद्यार्थी 3 : “स्कूल में जब कभी किसी ब्राह्मण स्टूडेंट को पैर लग जाता है तो प्रणाम करते हैं।”

ये उद्धरण जातीय पूर्वाग्रह और रूढ़ियों की गहराई को समझने के लिए पर्याप्त हैं। इसके पोषण में शिक्षक भी भूमिका निभा रहे हैं। भागीदार विद्यार्थियों ने बताया कि शिक्षक भी उनकी जाति जानते हैं। इसके प्रमाण में एक विद्यार्थी ने साझा किया कि जब फॉर्म में भरना होता है तो शिक्षक ख़ुद ही विद्यार्थियों की जाति भर देते हैं। इसपर एक विद्यार्थी ने असहमति व्यक्त की और कहा, “कभी-कभी हम लोगों से पूछ लेते हैं।” इसपर दूसरे विद्यार्थी ने कहा, “सबसे नहीं पूछते हैं। केवल ओबीसी एवं एससी से पूछते हैं। कई बार शिक्षक हम लोगों से घर में पूछने को कहते हैं और जाति प्रमाण-पत्र भी लाने को कहते हैं।”

यहाँ देख सकते हैं कि कक्षा में होने वाली सामान्य बातचीत या काग़ज़ी कार्यवाही के लिए ली जाने वाली सूचना भी जातीय अस्मिता के आधार पर कक्षा को अलग-अलग वर्गों में बाँट देती है।

ऐसे ही औपचारिक शिक्षा और नौकरी के सन्दर्भ में आरक्षण की भिन्न व्याख्याएँ प्रकट हुईं। उच्च जाति के एक विद्यार्थी का कहना था, “मेरे घर में बारहवीं के बाद प्रवेश परीक्षा पास करने को लेकर बातचीत होती है। उसमें कैटेगरी के नम्बर पर चर्चा होती है।” यह पूछे जाने पर कि ‘कैटेगरी के नम्बर’ से क्या आशय है? उसने बताया कि इस वर्ग के विद्यार्थियों का कम अंक पर भी चयन हो जाता है। उसकी इस बात पर कुछ भागीदारों ने अपने व्यक्तिगत अनुभव साझा करते हुए अपने बड़े भाई-बहनों की कुछ परीक्षाओं में असफलता का कारण इसे बताया। इसी मुद्दे पर पिछड़ी और अनुसूचित जातियों के विद्यार्थी ‘कम नम्बर’ वाले तर्क के प्रति मौन थे। केवल एक विद्यार्थी ने कहा कि वह इस तर्क से सहमत नहीं है। इसे वह ‘आरक्षण’ से जोड़कर बताता है। उसके अनुसार, आरक्षण एक ‘अधिकार’ है जिसे बाबा साहेब ने ग़रीबों के विकास

चित्र : हीरा धुर्वे

के लिए संविधान में दिया था। इस प्रकरण में देख सकते हैं कि उच्च जाति के विद्यार्थियों में 'श्रेष्ठता बोध' को क़ायम रखने के लिए अधिक अंक और कम अंक का दुष्प्रचार किया जा रहा है। चूँकि यह मामला औपचारिक शिक्षा का है जहाँ संवैधानिक अधिकारों की विश्लेषणात्मक समझ की बजाय दुष्प्रचारों को मान लेने की प्रवृत्ति है। इस प्रवृत्ति के प्रति दूसरे समूह का मुखर न होना पुनरुत्पादनवादी संस्कृति का प्रमाण है। जहाँ वे अपनी उपस्थिति को लेकर मुखर नहीं हैं। पढ़ाई की तरह ही नौकरी ऐसा मुद्दा रहा जिसके सन्दर्भ में आरक्षण की चर्चा हुई। उच्च जाति का एक विद्यार्थी कहता है, "पिछड़ी जातियों को आसानी से नौकरी मिल जाती है।" उसका स्वर इस वर्ग के लिए उपेक्षा भरा था। उसके इस कथन के उत्तर में निम्न जाति के एक विद्यार्थी का उत्तर था, "नौकरी में हर जाति के लिए सीटें निकलती हैं।" और "बाबा साहेब ने नौकरी में आरक्षण दिलाया ताकि हम लोगों की ग़रीबी दूर हो सके।"

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि बच्चों के बीच जातीय विभेद की उपस्थिति शिक्षा और नौकरी के सन्दर्भ में सकारात्मक संवैधानिक हस्तक्षेप की महत्ता को विवाद का कारण बना दे रही है। वे तर्क और प्रमाण-आधारित वैचारिकी से दूर हो रहे हैं और संवैधानिक अधिकारों की सराहना के स्थान पर सामाजिक संरचनागत विसंगतियों के बीच इन्हें अपने जातीय विशेषाधिकारों का हनन मान रहे हैं।

चित्र : हीरा धुर्वे

निष्कर्ष

उपर्युक्त अवतरणों में बच्चों के साथ बातचीत का जो लेखा-जोखा प्रस्तुत किया गया उससे इतना तो स्पष्ट है कि बच्चों के विचारों और विश्वासों पर जाति-बोध का गहरा प्रभाव है। उनकी रोज़मर्रा की गतिविधियाँ और अन्तःक्रियाएँ जातीय विभेद से भरी हुई हैं। वे अपनी जातीय अस्मिताओं को श्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए पूर्वाग्रहों एवं रूढ़ियों को आत्मसात कर रहे हैं। इन व्यवहारों के लिए परिवार, स्कूल और समुदाय में समान रूप से स्वीकृति है। कहीं भी आलोचनात्मक चिन्तन का अवकाश नहीं है। वे बिना जाँचे-परखे या मूल्यांकन किए जाति सम्बन्धित सामाजिक चलन को स्वीकृति दे रहे
हैं। इन परिस्थितियों में केवल कक्षा में कुछ प्रकरणों और गतिविधियों के माध्यम से इस प्रवृत्ति को प्रश्नांकित नहीं कर सकते हैं। हमें विचार करना होगा कि जहाँ-जहाँ रूपान्तरण और बदलाव की वैचारिकी है चाहे वह साहित्य हो, जनसंचार माध्यम हों, लोकचिन्तक हों या स्थानीय इतिहास, उनपर बातचीत करनी होगी। यहाँ मामला केवल विविधता से परिचित कराने का नहीं है। इससे तो बच्चे परिचित हैं ही। सवाल है, यह विविधता दो समूहों के बीच विभेद, विद्वेष और ऊँच-नीच का कारण क्यों बन रही है? इसे बिना पूछे और इसका ठोस उत्तर खोजे हम बच्चों को केवल 'परिचित' कराएँगे, उन्हें बदलाव का कर्ता बनने के लिए नहीं तैयार कर पाएँगे।

ऋषभ कुमार मिश्र महात्मा गांधी अन्तरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा के शिक्षा विभाग में अध्यापक हैं। शिक्षा और समाज से जुड़े विषयों पर लेखन में सक्रिय हैं। इन्होंने केन्द्रीय शिक्षा संस्थान, दिल्ली विश्वविद्यालय से 'बच्चों की सामाजिक विज्ञान की समझ' विषय पर शोध कार्य किया है।

सम्पर्क : rishabhrkm@gmail.com

स्कूल की भाषा बनाम बच्चे की भाषा बच्चों से सीखना

महेश झरबड़े

यह लेख एक बहुभाषी समाज के बच्चों और उनकी शिक्षा, ख़ासकर भाषा शिक्षा पर केन्द्रित है। लेखक अपनी कक्षा के उदाहरण प्रस्तुत करते हैं और बताते हैं कि बच्चों की भाषा को स्कूल और कक्षा में जगह देने में शिक्षक की क्या भूमिका होती है। एक अन्य उदाहरण सुझाता है कि भाषाओं को जगह देना भाषा और संस्कृति के रिश्ते को सहजने में मदद करता है व साथ ही किसी संस्कृति के अच्छे विचारों को फैलाने में भी मददगार हो सकता है। वे बताते हैं कि इन प्रयासों का शिक्षक के बच्चों से साथ रिश्ते और विश्वास के साथ ही बच्चों के आत्मविश्वास पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

लेख इस ओर भी इशारा करता है कि बच्चों से नई भाषा सीखने के अनुभव से यह समझ भी बनती है कि बच्चों को नई भाषा सिखाने की प्रक्रिया में किन बातों का ध्यान रखने की ज़रूरत है। सं.

मुस्कान संस्थान का जिन बस्ती समुदायों के साथ काम है उनमें मुख्य रूप से गोण्ड, पारधी, नट, मराठी, मुस्लिम बंजारा और अगरिया भाषाओं को जानने-समझने वाले लोग शामिल हैं। इस आधार पर यदि मैं कहूँ कि हमारे पास बहुभाषिता का एक बड़ा भण्डार है तो यह अतिशयोक्ति नहीं होगी। इन समुदायों से जुड़े कुछ बच्चे बहुसंख्या में तो कुछ अल्पसंख्या में मुस्कान के 'जीवन शिक्षा पहल' स्कूल में पढ़ने आते हैं और चूँकि मुस्कान में सभी बच्चों को अपनी भाषा में अपनी बात रखने और करने की स्वतंत्रता है इसलिए अलग-अलग समय पर अलग-अलग भाषाओं के शब्द और वाक्य कानों में पड़ते रहते हैं। इस तरह अनजाने में ही नई भाषाओं के साथ रूबरू होने के मौक़े मुझे मिलते रहते हैं। मैंने बच्चों और युवाओं के साथ काम के दौरान कई बार ये महसूस किया कि चर्चा या बातचीत के दौरान उनकी भाषा के मात्र एक शब्द का इस्तेमाल भी बच्चे और मेरे बीच विश्वास के सेतु का काम करता है।

कभी-कभी कक्षा से बाहर कोई बच्चा घूमता दिखता है तो मैं उसे रोककर पूछ लेता हूँ, मैं बागमुगालियां जा रहा हूँ? को तुम्हारी भाषा में कैसे बोलेंगे? वो मेरी तरफ़ देखता है, मुस्कुराता है और पूछता है हमारी भाषा में? फिर कहता है, 'नन्ना बाग़मुगालियां डयतना।' मैं रुक-रुक

चित्र : शिवेन्द्र पांडिया

कर वाक्य दोहराता हूँ। ग़लत उच्चारण होने पर वो मुझे करेक्ट करता है और दौड़कर कक्षा में चला जाता है। वहाँ वो अपने दोस्तों को बताता है। कुछ समय बाद खनक और पार्वती आकर पूछते हैं, हमारी भाषा में कैसे बोलेंगे, मैं बागमुगालियां जा रहा हूँ। मैं दोहराता हूँ, 'नन्ना बाग़मुगालियां डयतना।' वो एक दूसरे की तरफ़ देखते हैं और कहते हैं, भैया, आपको हमारी भाषा आने लगी। मैं एक लाइन बोलता हूँ और बच्चों का आत्मविश्वास कहता है मुझे सबकुछ आ गया। मैं पूछता हूँ, क्या मुझे ये लाइन लिखकर दे सकते हो? वो हाँ में सर हिलाकर चली जाती हैं। लंच टाइम पर करण, पार्वती और खनक मुझे ढूँढ़ते हुए आते हैं और मेरे हाथ में एक काग़ज़ पकड़ाकर कहते हैं, पढ़के बताओ; मैं वापिस दोहराता हूँ 'नन्ना बाग़मुगालियां डयतना।' वो ख़ुश हो जाते हैं और पूछते हैं, आपको एक और लाइन लिखकर दें क्या? मेरी हाँ उनको एक अलग स्तर के आत्मविश्वास से भर देती है। इसके बाद मुझे उनसे एक नया वाक्य मिलने लगता है।

अब हम जब भी मिलते हैं वे मुझे गोण्डी भाषा की एक लाइन बोलना सिखाते हैं। मैं एक लाइन सीखकर ख़ुश होता हूँ और वो एक लाइन सिखाकर बेहद ख़ुश। हमको एक दूसरे से जोड़ने में उनकी अपनी भाषा का सबसे अहम रोल है। और साथ ही ये अहसास, कि हम किसी बड़े को कुछ सिखा रहे हैं, उन्हें आत्मविश्वास और आत्मसम्मान से भर देता है।
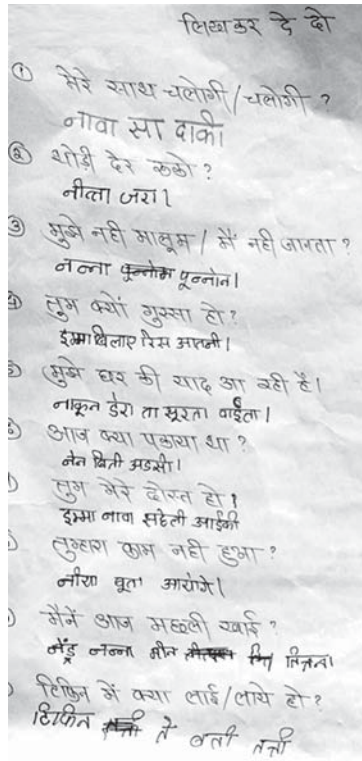
आमतौर पर समाज के बड़े लोगों और शिक्षकों की ये ज़िम्मेदारी मानी जाती है कि वे बच्चों को सिखाएँ; पर बच्चे भी बहुत कुछ सिखा सकते हैं ये मान पाना सबके लिए कहाँ आसान है। बच्चों से उनके अन्दाज़ में सीखने का एक अलग ही आनन्द है। *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005* के अनुसार, "भाषा एक ऐसा संसाधन है जो बच्चे विद्यालय में लाते हैं और जो विचार, संवाद और समझने में मदद करता है।"[1] कक्षा-कक्ष प्रक्रिया में घर पर बोली जाने वाली भाषा का प्रयोग बच्चे के आत्मसम्मान और आत्मविश्वास के लिए अति आवश्यक है।[2] बच्चों से बात करते हुए मैंने इस तथ्य को बहुत नज़दीक से महसूस किया।

बच्चों से उनकी भाषा सीखने की इस प्रक्रिया में मुझे थोड़ा वक़्त ज़रूर लगा; पर सीखने के दौरान मुझे कभी भी डर नहीं लगा जो आमतौर पर बच्चे स्कूल में महसूस करते हैं। एक दिन खनक और पार्वती ने कहा कि हम आपको रोज़ सिखा रहे हैं न, कल जो-जो आपको याद है वो लिखकर ले आना और जो सीखना है वो भी लिखकर लाना। मैंने अपना होमवर्क किया। मुझे यक़ीन नहीं हो रहा था कि मैंने ऐसे ही बातों-बातों में काफ़ी वाक्य ठीक से बोलना सीख लिए थे।

इसका एक फ़ायदा यह हुआ कि दूसरे बच्चे भी मुझे उनकी भाषा सिखाने लगे। और मैंने सबके सामने शर्त रख दी कि जब भी

1. *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005*, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के बच्चों की समस्याएँ

2. *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005*, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के बच्चों की समस्याएँ

हम मिलेंगे तुम लोग मुझसे अपनी भाषा में ही बात करना; चाहे मुझे समझ आए या न आए। आजकल जब भी मैं बच्चों के बीच होता हूँ नई भाषा के कुछ-न-कुछ नए शब्द दोहराता रहता हूँ। कोई पूछता है, 'उट्लो खई लीदों?' (खाना खा लिया?), कोई कहता है, 'तुमि कई आले?' (आप कब आए) और कोई बताता है, 'मिये रातानु मर्गानु लुखानु खादू' (हमने रात को मुर्ग़े की सब्ज़ी खाई)।

यह बच्चों के साथ हमारा बहुत छोटा मंच है, पर यहाँ एक साथ दो-तीन और कभी-कभी चार-पाँच भाषाएँ बतियाती हैं, अपनी पहचान बनाती हैं, एक दूसरे को समझती हैं, सम्मान पाती हैं और बच्चों के बीच भाषाई सौहार्द्र बढ़ाती हैं।

मैं कुछ वाक्य बोल पाता हूँ और कुछ नहीं। कुछ भाषाओं के शब्दों का ठीक उच्चारण नहीं कर पाता तो बच्चे प्रैक्टिस कराते हैं; कहते हैं सरल तो है बोलो, आ जाएगा। यह भी समझ आता है कि हर भाषा के उच्चारण का अपना अन्दाज़ है। कभी-कभी मैं शब्द सही पढ़ता हूँ पर शब्दों का उच्चारण एकदम सही नहीं होता। नई भाषाओं को सीखते हुए मुझे यह भी स्पष्ट रूप से समझ आ रहा है कि पढ़ने के साथ-साथ सही उच्चारण भी महत्त्वपूर्ण है।

भाषा सीखने में क्या-क्या मुश्किलें होती हैं ये समझना हो तो बच्चों की भाषा सीखना ही चाहिए। अकसर ये कहा-सुना जाता है कि बच्चे सीखते नहीं हैं। अमुक बच्चा बहुत स्लो लर्नर है, ये बच्चे ठीक से उच्चारण ही नहीं कर पाते, इत्यादि। बच्चों की भाषा सीखते हुए मुझे इन सब सवालों के उत्तर आसानी से मिलने लगे हैं और ये भी समझ आ रहा है कि बच्चों को दूसरी भाषा या नई भाषा सिखाते समय किन बातों का ख़्याल रखा जाना चाहिए। कितने धैर्य की ज़रूरत है। कई शैक्षिक नीति दस्तावेज़ों ने इसकी तरफ़ ध्यान दिलाया है, "स्कूल का सबसे पहला दायित्व बनता है घर की भाषा से स्कूल की भाषा को जोड़ना। उसके बाद एक या उससे अधिक भाषाओं को जोड़ दिया जाए ताकि बच्चा पहली भाषा छोड़े बिना अन्य भाषा में आसानी से पहुँच सके।[3]

भाषा से जुड़े कुछ वाक़ये, कुछ सवाल

वाक़या 1 : बागमुगालियां बस्ती का सोहेल और राजीव नगर का दिलबरस बहुत अच्छे दोस्त हैं। एक की भाषा गोण्डी है और दूसरे की पारधी। सोहेल ने बताया कि हमारी दोस्ती मूंदीखेड़ी कैम्प में हुई थी। मैंने अपने दोस्तों से बात करते हुए 'माड़साल' बोला तो दिलबरस बोला, 'माड़साल' नहीं, 'माड़सा' होता है। मैंने बोला कि भाई तू चुप रह, मेरी भाषा मैं जानता हूँ। उसने कहा कि 'माड़सा' तो मेरी भाषा में भी बोलते हैं। हमने पहले थोड़ी चिक-चिक की, फिर बात की, तो पता चला गोण्डी के 'माड़साल' और पारधी के 'माड़सा' का एक ही मतलब है। फिर मैंने कहा कि दिलबरस, तू मेरे लिए 'माड़साल' नहीं है और उसने कहा, तू भी 'माड़सा' नहीं है और हम दोनों दोस्त बन गए। (गोण्डी के 'माड़साल' और पारधी के 'माड़सा' शब्द का अर्थ है ऐसा बाहरी इंसान जो उनकी जाति का नहीं है। जब कोई नया इंसान उनके समुदाय में जाता है तो उसे इस नाम से बुलाया और पहचाना जाता है। इनकी बस्तियों में लोगों को कहते सुना जा सकता है कि ये माड़सा या माड़साल कौन है?)

3. *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005*, भारतीय भाषाओं का शिक्षण, पेज 14

दो अलग समुदायों को आपस में जोड़ने में भाषा क्या भूमिका अदा कर सकती है, यह इस उदाहरण में बख़ूबी झलकता है। इन शब्दों पर थोड़ा गहराई से सोचें तो एक और बात जो समझ आती है वो यह कि बहुत-से समुदायों में बाहरी व्यक्ति को उसके रंग, काम, जाति या धर्म के आधार पर पहचाना जाता है लेकिन इस समुदाय में बाहरी लोगों के लिए जाति, वर्ग से परे एक ख़ास शब्द है; यह आदिवासी संस्कृति की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता को भी बताता है। सेंट ऑगस्टाइन ने बहुत पहले कहा था, "भाषा हमारे लिए दुनिया को रोशन करती है। इसमें हम जोड़ सकते हैं कि हर भाषा अपने तरीक़े से दुनिया को रोशन करती है।"[4] यहाँ यह बात भी बिलकुल वाज़िब लगती है, "एक भाषा को खोने का मतलब है इससे सम्बन्धित पूरी-की-पूरी साहित्यिक और सांस्कृतिक परम्परा का नष्ट होना या संसार को जानने के एक विशेष तरीक़े का नुक़सान।"[5]

वाक़या 2 : मैंने स्कूल के नोटिस बोर्ड पर अलग-अलग समुदाय के बच्चों से पूछकर 'ये हमारा स्कूल है', वाक्य को गोण्डी, मराठी, कोरकू, पारधी, भीली, नट और बंजारी भाषा में लिखा और नोटिस बोर्ड पर चस्पा कर दिया। जब लंच का समय हुआ तो ज़्यादातर बच्चे इन वाक्यों को देख रुककर पढ़ रहे थे और ख़ुश हो रहे थे। भरत बोला कि हमारे गाँव की भाषा में तो लिखा ही नहीं है। सब अपनी-अपनी भाषा में पढ़कर ख़ुश हो रहे हैं, हमारी भाषा में भी लिख दो न!

एक युवा लड़की ने फ़ोटो खींचकर व्हाट्सएप स्टेटस पर लगाया। उसकी दोस्त ने देखा और मुझे फ़ोन करके बोली कि भैया, आपने 'ये मोर स्कूल हाय' ग़लत लिखा है; उसको 'ये हमर स्कूल हाय' कर दो। दसवीं कक्षा के बच्चे ने आकर पूछा कि 'स्कूल' को सब भाषाओं में स्कूल ही क्यों बोलते हैं? गोण्डी में 'इदू मावा स्कूल आंद', पारधी में 'ये म्हारो स्कूल जे', बंजारी में 'ये मारो स्कूल छे'। सब भाषाओं में स्कूल ही है। फिर कुछ सोचकर बोला, ओह! समझ आ गया ये तो अँग्रेज़ी का शब्द है, लेकिन हमारी भाषा में स्कूल के लिए कोई शब्द ही नहीं है, ऐसा क्यों है ये तो सोचना पड़ेगा? यदि एक साथ इतनी भाषाओं में वह एक ही वाक्य नहीं पढ़ता तो 'हमारी भाषा में स्कूल के लिए कोई शब्द क्यों नहीं है', जैसा गम्भीर सवाल सम्भवतः उसके ज़ेहन में नहीं आता। ये बहुभाषा की ही तो ख़ूबसूरती है जिसने उसके ज़ेहन में अपनी भाषा के लिए एक बड़ा सवाल खड़ा किया।

वाक़या 3 : सितम्बर महीने में मैं बागमुगालियां बस्ती के बच्चों को 'बस्ती का चोर' कहानी सुना रहा था। इस दौरान 13 वर्षीय जवान बीच-बीच में अपनी भाषा में कुछ-कुछ बोलता जा रहा था जिससे अन्य बच्चों का ध्यान भटक रहा था। मैंने उससे कहा कि जवान, मैं इस कहानी की दो लाइन हिन्दी में सुनाता हूँ और तुम अपनी भाषा गोण्डी में सबको बोलकर बताना, ऐसा करें? और वह मान गया। उसका इतनी जल्दी मान जाना मुझे हज़म ही नहीं हुआ; पर ये सच था। कहानी के बाद बिजली ने कहा कि भैया, जवान ने हमारी भाषा में सुनाया तो ज़्यादा समझ आया और मज़ा भी आया।

इस बात ने जवान को ख़ुश किया और मुझे सोचने के लिए मज़बूर कि मैं अपने लिए आसान भाषा, हिन्दी, में कहानी सुनाकर या कोई बात बताकर ये मान लेता हूँ कि गोण्डी बोलने वाली बच्ची 'वो' समझ जाएगी। क्या ये मानना सही है? जब मैं ज़्यादातर बातों / परिस्थितियों को अपनी कम्फ़र्टेबल भाषा में समझता हूँ तो किसी और की कम्फ़र्टेबल भाषा में कहे बिना उससे समझ जाने की उम्मीद करना कितना मुनासिब है? इस वाक़ये ने *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005* के अन्तर्गत 'पाठ्यचर्या

4. *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005*, शिक्षा के लक्ष्य

5. *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005*, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के बच्चों की समस्याएँ

बदलाव के लिए व्यवस्थागत सुधार' में कही गई एक बात को एकदम जीवन्त कर दिया, "जहाँ बच्चे के घर की भाषा और स्कूल की भाषा में फ़र्क़ होता है वहाँ समझाना वास्तव में एक बड़ा मसला होता है।"[6] *पाठशाला भीतर और बाहर* के आलेख 'भाषा शिक्षण और भाषाई खेल' में कुसुमलताजी अपने अनुभव साझा करती हुए लिखती हैं, "भय रहित माहौल में बच्चे जल्दी और अधिक सीखते हैं एवं अपनी बात निःसंकोच अध्यापक के समक्ष रखते हैं। सीखने की प्रक्रिया में बच्चों से दोस्ती करना बहुत सहायक होता है।"[7] मैं इसमें सिर्फ़ इतना जोड़ना चाहता हूँ कि भय रहित माहौल, निःसंकोच अपनी बात रखना और बच्चों से दोस्ती का एक महत्त्वपूर्ण आधार कक्षा में बहुभाषिता का उपयोग हो सकता है।

क्या कहता है हमारा संविधान

बच्चों की शिक्षा में उनकी भाषा का अहम रोल है, इस बात की पुष्टि हमारा संविधान भी करता है। जहाँ संविधान प्रत्येक नागरिक को अपनी भाषा में राज्य को सम्बोधित करने का अधिकार प्रदान करता है, वहीं धारा 350-अ (सातवाँ संशोधन अधिनियम 1956) में प्राथमिक स्तर की शिक्षा के लिए भाषिक अल्पसंख्यक समुदाय के बच्चों को उनकी मातृभाषा में पठन-पाठन की बात की गई है।[8] *1968 की शिक्षा नीति* के अनुसार, "स्कूल में जो भाषा पढ़ाई जाए वह मातृभाषा हो या क्षेत्रीय भाषा; मातृभाषा से आशय बच्चे की वह भाषा जो उसके घर बोली जाती है जिसके साथ वह अपने दोस्तों के बीच संवाद स्थापित करता है।" शिक्षा के क्षेत्र में हुए कई अध्ययन भी इस बात की पुष्टि करते हैं कि कक्षा में बहुभाषिता बच्चों व शिक्षकों के बीच रिश्तों को और मज़बूत करती है। यूनेस्को के *शैक्षणिक आधार पत्र* के अनुसार, "आरम्भिक शिक्षण के लिए मातृभाषा अत्यन्त आवश्यक है और इसे जहाँ तक बरक़रार रखा जा सके, रखा जाना चाहिए।[9]

अन्त में यही कहना चाहता हूँ कि भाषा सिर्फ़ सम्प्रेषण का माध्यम भर नहीं है, यह इससे आगे भी बहुत कुछ है। न सिर्फ़ शिक्षा में बल्कि समाज के हर क्षेत्र में बहुभाषिता बहुत ही महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। बहुभाषा ज्ञान कई स्तरों पर सामाजिक सम्बन्धों को मज़बूत करता है। सम्प्रेषण का माध्यम कही जाने वाली यही भाषा कहीं सामाजिक सत्ता का प्रतीक है तो कहीं भाषा के कारण ही लोग तिरस्कार भी झेल रहे होते हैं। सभी भाषाओं का विकास लोगों के व्यवहार में न सिर्फ़ लचीलापन लाएगा, बल्कि सामाजिक सहिष्णुता को भी जन्म देगा। हमें यह मानना ही होगा कि जिस तरह जीवन के लिए जैव विविधता आवश्यक है, ठीक उसी तरह सामाजिक सद्भाव, समता, न्याय व सफल जनतंत्र के लिए भाषाई विविधता भी ज़रूरी है। "भारत जैसे देश में सामाजिक सौहार्द्र तभी सम्भव है जब हम एक दूसरे की भाषा और संस्कृति को सम्मान दें।[10]

6. *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005*, पाठ्यचर्या बदलाव के लिए व्यवस्थागत सुधार
7. *पाठशाला भीतर और बाहर*, अंक 7, भाषा शिक्षण और भाषाई खेल
8. *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005*, भारतीय भाषाओं का शिक्षण
9. *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005*, भारतीय भाषाओं का शिक्षण
10. *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005*, भारतीय भाषाओं का शिक्षण, पेज 22

महेश झरबड़े पिछले 15 सालों से बच्चों व युवाओं के साथ शिक्षा सम्बन्धी कामों से जुड़े रहे हैं। एकलव्य के शिक्षा प्रोत्साहन केन्द्र और मुस्कान के जीवन शिक्षा पहल स्कूल में बच्चों व युवाओं के विभिन्न मुद्दों को शिक्षा के साथ जोड़कर देखने का प्रयास किया है। आदिवासी और वंचित तबक़ों के लिए किस तरह की शिक्षा हो, ये समझने का प्रयास जारी है। आपने सिनर्जी संस्थान, हरदा के साथ जुड़कर इस मुद्दे को गहराई से समझने की कोशिश भी की है। बच्चों, युवाओं व ग्रामीण विकास के मुद्दों पर पढ़ने और लिखने में रुचि है।
सम्पर्क : mjharbade@gmail.com

अर्थ

मीनू पालीवाल

यह लेख पढ़ना सिखाने के प्रचलित तरीक़ों और इन तरीक़ों को काम में लेने के दौरान आने वाली समस्याओं का ज़िक्र करता है। और फिर चर्चा करता है कि सही मायनों में पढ़ने का अर्थ क्या है और बच्चे यह कैसे सीखते हैं? कक्षा में जब बच्चे पढ़ने का काम कर रहे थे उस दौरान किए गए कुछ अवलोकनों और उनका विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए लेख यह समझने में मदद करता है कि पढ़ना सीखने, माने जो लिखा गया है उसके अर्थ को समझने में अनुमान लगाना, पूर्वज्ञान और अनुभव कैसे काम करते हैं? सं.

पढ़ना क्या है? इस विषय पर मैंने बहुत-से लेख पढ़े हैं। एक मुख्य बात जो अधिकांश लेख रेखांकित करते हैं, यह है कि "पढ़ना केवल अक्षर, मात्रा पहचानने और जो लिखा है उसको हूबहू बोलने तक सीमित नहीं है। पढ़ने में अनुमान, स्वयं द्वारा बोली जाने वाली भाषा और शब्द पहचान की अहम भूमिका होती है।" मैंने इन बातों को कक्षा में पढ़ने की प्रक्रियाओं के दौरान घटित होते देखा है, और इससे मुझे पढ़ने की प्रक्रिया को सम्पूर्णता में समझने में मदद मिली है। पढ़ने में अर्थ केन्द्र बिन्दु की तरह काम करता है। अक्षर व मात्रा के साथ-साथ, शब्द पहचानना, वाक्य की संरचना को समझते हुए आगे के शब्दों के बारे में, और टैक्स्ट की संरचना को समझते हुए आगे क्या आएगा, यह अनुमान लगाना भी पढ़ना सीखने के लिए बहुत ज़रूरी है। ये बातें बेहद महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि आज भी अधिकांश स्कूलों में पढ़ना सिखाने के लिए सिर्फ़ अक्षर, मात्रा की पहचान और उन्हें याद करवाना ही ज़रूरी समझा जाता है और अर्थ तक पहुँचने व अनुमान और शब्द पहचान वाले कौशल का विकास करने की तरफ़ ध्यान ही नहीं दिया जाता। मैंने बच्चों की पढ़ने की प्रक्रियाओं का अवलोकन करते हुए पाया कि बच्चे पढ़ते हुए अर्थ निर्माण करते चलते हैं। इस लेख में ऐसे ही कुछ उदाहरणों को साझा किया गया है।

उदाहरण 1

कक्षा 4 के 4-5 बच्चे *बरखा* सीरीज़ की किताब *तालाब के मज़े* पढ़ रहे थे। यह किताब बगुलों के बारे में है। ये बच्चे छत्तीसगढ़ के सरकारी स्कूल में पढ़ रहे थे। यहाँ बच्चे छत्तीसगढ़ी भाषा बोलते हैं। छत्तीसगढ़ी में बगुले को कोंकड़ा बोलते हैं। किताब में काफ़ी पन्नों पर बगुलों की तस्वीर बनी है। बच्चे कहानी पढ़ने के दौरान जहाँ-जहाँ 'बगुला' लिखा था उसे लगातार 'कोंकड़ा' पढ़े जा रहे थे। मुझे लगा, कितनी अजीब बात है कि कोंकड़ा 'क' से शुरू होता है और बगुला 'ब' से, और दोनों शब्द देखने में भी काफ़ी अलग

दिखाई देते हैं इसके बावजूद बच्चे बगुले की बजाय कोंकड़ा पढ़ रहे थे।

यहाँ ध्यान देने वाली बात यह है कि बगुले शब्द को छोड़कर बाक़ी शब्द सही पढ़े जा रहे थे। उदाहरण के लिए, वहाँ बहुत सारे कोंकड़े आए हुए थे। बच्चों ने जहाँ 'बगुला' शब्द आया वहाँ 'कोंकड़ा' पढ़ा और जहाँ 'बगुले' शब्द आया वहाँ 'कोंकड़े' और इसी तरह 'बगुलों' को 'कोंकड़ों' पढ़ा। यहाँ पर बच्चे को सुधारना और बगुला ही पढ़ने के लिए बाध्य करना उसके अर्थ निर्माण की प्रक्रिया में हस्तक्षेप करना है।

उदाहरण 2

नर्मदा की आत्मकथा (कक्षा 4 मध्य प्रदेश की पाठ्यपुस्तक) में एक लाइन आई

लिखा था : मेरा जन्म इसी कुण्ड से हुआ था।

पढ़ा गया : मेरा जन्म इसी कुण्ड में हुआ था।

मेरे साथ कक्षा में शिक्षक मौजूद थे, उन्होंने इस बात पर ग़ौर नहीं किया। मैंने उनका ध्यान इस तरफ़ दिलाया। शिक्षक काफ़ी आश्चर्य से बोले कि क्या ऐसा हुआ है? ये बच्ची तो बहुत अच्छा पढ़ती है (यहाँ अच्छा पढ़ने का मतलब जैसा लिखा है वैसा ही वाचन करने से है)। शिक्षक बच्ची से फिर से पढ़वाना चाहते थे। मैंने कहा कि आप पॉइंट आउट करके अपनी तरफ़ से मत बताइएगा कि 'से' लिखा है, तुमने 'में' क्यों पढ़ा। यदि आप जानना चाहते हैं कि ये सिर्फ़ एक ग़लती है और दोबारा पढ़ने में सुधर जाएगी तो आप बच्ची से पूरा अनुच्छेद फिर से पढ़ने के लिए कहें। बच्ची आगे पढ़े जा रही थी। शिक्षक ने उसे रोका और पूरा अनुच्छेद फिर से पढ़ने के लिए कहा। इस बार भी बच्ची ने यही पढ़ा, 'मेरा जन्म इसी कुण्ड में हुआ था।'

कारण

हम आम बोलचाल में कहते हैं कि मेरा जन्म नागपुर में हुआ था। यह तो नहीं कहते कि मेरा जन्म नागपुर से हुआ था, परन्तु नदी के सन्दर्भ में यह 'से' हो जाता है।

उदाहरण 3

कक्षा तीसरी के बच्चे *बरखा* सीरीज़ की पहले स्तर की किताब *फूली रोटी* पढ़ रहे थे। उस किताब में लगभग 7 बार 'मम्मी' शब्द लिखा है। कक्षा में 13 बच्चे पढ़ सकते थे। उनमें से 10 बच्चों ने जहाँ-जहाँ मम्मी लिखा था उसे 'माँ' पढ़ा।

कुछ बच्चों ने माँ के अलावा भी शब्दों को बदलकर पढ़ा, जैसे– 'लोई' (आटे की लोई) को

बच्चों ने अपने घर पर बोले जाने वाले शब्द से बदल दिया। कारण, बच्चे पढ़ने के दौरान अर्थ निर्माण के लिए पूर्वज्ञान का उपयोग करते हैं, जिससे वे पढ़ने में केवल अक्षर-मात्रा पर निर्भर न हों। पूर्वज्ञान और अक्षर-मात्रा की मदद से बच्चे

मम्मी ने आटे में सौंफ और गुड़ मिला दिया।

अनुमान भी लगाते हैं। बच्चों ने चित्र और सन्दर्भ के आधार पर 'मम्मी' को 'माँ' पढ़ा है और यही कुछ अन्य शब्दों के साथ भी होता है। पर यहाँ अर्थ नहीं बदल रहा है, कोई ऐसा शब्द नहीं बदला गया जिससे अनुच्छेद का अर्थ ही बदल जाए। यह सब अनायास नहीं हो रहा है। हम सभी को पढ़ना सिखाने की प्रक्रिया को समग्रता में समझने के लिए बच्चों का बारीक़ अवलोकन करने की ज़रूरत है।

शिक्षक से बातचीत

मेरे बग़ल में शिक्षिका बैठी हुई थीं। जब ऐसा हुआ तो मैंने उन्हें बताया कि बच्चे मम्मी को लगातार माँ पढ़ रहे हैं। उन्हें यक़ीन नहीं हुआ। आश्चर्य से मुझसे बोलीं कि रुको, एक बच्चे को बुलाते हैं और फिर से पढ़वाते हैं। मैंने उनसे थोड़ा ठहरने का अनुरोध किया और कहा कि जब वो पढ़ रहा होगा तब आप उसे बीच में मत रोकिएगा और न ही किसी तरह से बच्चे को संकेत कीजिएगा। बच्चा आया उसने पाठ पढ़ दिया। अबकी बार भी हर जगह 'माँ' ही पढ़ा गया।

शिक्षिका से पूछा कि आख़िर ऐसा क्यों हो रहा होगा? शिक्षिका बिना ज़्यादा समय लिए बोलीं, "अरे, हमारे बच्चे माँ ही बोलते हैं, मम्मी नहीं बोलते इसलिए माँ ही पढ़ रहे हैं।"

मेरे विचार

जिन शिक्षिका की कक्षा के यह अवलोकन हैं वे बच्चों से बहुत बातचीत करती हैं। शायद इसलिए और स्कूलों के मुक़ाबले यहाँ पुस्तक पढ़ पाने वाले बच्चों की संख्या अधिक है। लगभग सारे बच्चे बोलते हैं और मैडम बातचीत को बहुत बढ़िया से विस्तार देती हैं।

शिक्षिका बच्चों के साथ बातचीत में आनन्द लेती हैं इसलिए मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ कि इतने सारे बच्चों द्वारा मम्मी को माँ पढ़ा जाना वे स्वयं अवलोकन में क्यों नहीं पकड़ पाईं! जब उन्होंने स्वयं यह होते हुए देखा और उसपर ज़रा-सा चिन्तन करने के बाद ही, तुरन्त समझ लिया कि ऐसा क्यों हो रहा है। वे जानती थीं कि बच्चे माँ बोलते हैं, पर उन्होंने बच्चों के पढ़ने में मम्मी को माँ पढ़े जाने पर ग़ौर नहीं किया। इसके दो तात्पर्य हैं, एक तो यह कि सुनने वाले भी अर्थ पर ही ध्यान देते हैं और सुनते समय मम्मी और माँ का अर्थ एक ही होने पर वह ठीक ही लगता है। दूसरे, चूँकि अर्थ स्पष्ट हो जाता है इसलिए वर्णों की बारीक़ी पर ध्यान देना कम ज़रूरी हो जाता है।

एक और उदाहरण देखते हैं।

उदाहरण 4

कक्षा 4 में 'गुलाब जामुन' पाठ में एक बच्चा बहुत-से डिब्बे खोलकर गुलाब जामुन ढूँढ़ने की कोशिश करता है। उस पाठ की एक गतिविधि का चित्र आप आगे देख सकते हैं। इस गतिविधि में 3 कॉलम हैं– डिब्बों का क्रम, वस्तु का नाम, रम्मू को क्या हुआ। उदाहरणस्वरूप, पहले डिब्बे में मिर्ची की बुकनी और धाँस लगना लिखा है। एक बच्ची ने नीचे के सारे कॉलम में मैदा की बुकनी, चीनी की बुकनी, मूँग की बुकनी, आदि लिखा था। उस बच्ची को मैंने बुलाकर पूछा कि 'बुकनी' का अर्थ क्या है? उसने कहा, बुकनी यानी डिब्बा। क्या बच्ची का अनुमान आपको तार्किक लगता है? मेरी नज़र में बच्ची ने सीखने के एक प्रतिफल का प्रदर्शन किया है (नए शब्दों का सन्दर्भ की मदद से अर्थ पता करना)। हाँ, यह ज़रूर है कि इस बार अनुमान गड़बड़ हुआ है, परन्तु इस उदाहरण

3. उदाहरण के अनुसार नीचे दी गई तालिका को पूरा कीजिए–

डिब्बों का क्रम	वस्तु का नाम	रम्मू को क्या हुआ
उदाहरण–पहला	मिर्ची की बुकनी	धाँस लगना
दूसरा	मेदा	
तीसरा	चीनी	
चौथा	मूँग की दाल	
पाँचवाँ	हल्दी की गाँठे	
सातवाँ	सरसों का तेल	

से हम यह कह सकते हैं कि बच्ची सन्दर्भ की मदद से नए शब्दों का अर्थ पता करने की क्षमता विकसित कर रही है। बाद में मैंने बच्ची से पूछा कि रम्मू को धाँस क्यों लगी? बच्ची ने कहा, क्योंकि डिब्बे में मिर्ची की बुकनी थी। मैंने बच्ची से पूछा, 'मिर्ची की बुकनी' में बुकनी का अर्थ डिब्बे के अलावा और क्या हो सकता है। जब जवाब नहीं आया तो पूछा मिर्ची से धाँस कब ज़्यादा लगती है? जब मिर्च पीसी हुई होती है या जब सैंगी (बिना पीसी) होती है। अब बच्ची बोली, बुकनी मतलब मिर्च का चूरा। और फिर उसने स्वयं ही अपने लिखे को ठीक भी कर लिया, जो आप ऊपर चित्र में देख सकते हैं।

उदाहरणों का विश्लेषण

इन उदाहरणों में यह साफ़तौर पर दिखता है कि पूर्वज्ञान, अनुभव पढ़ने को प्रभावित करता है। यदि पढ़ना सिर्फ़ अक्षर मात्रा तक सीमित होता तो बच्चे बगुला को कोंकड़ा बिलकुल नहीं पढ़ते। 'बगुला' और 'कोंकड़ा' शब्द की लिखित आकृति में बहुत फ़र्क़ है। ऊपर दिए उदाहरण में यदि बच्चों से बातचीत की जाए कि कोंकड़े को बगुला भी बोलते हैं। क्या उसे किसी और नाम से भी जाना जाता है? और यह भी चर्चा की जा सकती है कि दूसरी भाषा में इसे और क्या-क्या कहते हैं। इस बातचीत के बाद हम यह उम्मीद कर सकते हैं कि कुछ बच्चे बगुला पढ़ने लगें। सम्भावना यह भी है कि बहुत-से बच्चे इसके बाद भी कोंकड़ा ही बोलें। यदि हम बच्चों को बगुला शब्द को सुनने के ज़्यादा मौक़े देंगे तो अधिकतर बच्चे बगुला पढ़ने लगेंगे।

इस उदाहरण में हमने देखा कि बच्चे जो शब्द इस्तेमाल करते हैं वह उनके पढ़ने में भी आ जाते हैं। जो भी शब्द उन्होंने बोले, सुने और संवाद में इस्तेमाल किए हैं वे उनके पढ़ने में आ जाते हैं। सुनना, बोलना, पढ़ना, लिखना एक साथ चलने वाली प्रक्रियाएँ हैं, इनमें कोई एक रेखीय क्रम नहीं है।

पढ़ने का उद्देश्य पाठ का अर्थ प्राप्त करना है, इसलिए यदि वाचन करने में कुछ शब्द अदल-बदल भी जाते हैं तो हमें तब तक परेशान नहीं होना चाहिए, जब तक कि अर्थ ही नहीं बदल जाता। ये ठीक है कि फिर भी इसे सुधारने का धीरे-धीरे प्रयास होना चाहिए ताकि आगे ज़्यादा कठिन टैक्स्ट से जूझने में दिक़्क़त न हो। इसके लिए हम आगे क्या कर सकते हैं इसपर विचार किया जा सकता है। पहली बात तो यह है कि बच्चे किसी शब्द को पढ़ पाएँ उसके लिए उन्हें उस शब्द का मौखिक रूप पता होना चाहिए और वे उनके उपयोग में होने चाहिए। जब वो शब्द बोलने में आने लगेंगे तो उनका पढ़ना भी सही होता जाएगा। उदाहरण के लिए, वाक्य 'चिड़िया की चहचहाहट सुनाई दे रही है', में कोई बच्चा चहचहाहट को चह-चहा-हट की बजाय चहच-हाहट पढ़े तो हम किस आधार पर उसे ग़लत बोलेंगे? और इसलिए ही यह कहा जाता है कि जो भाषा वो पढ़ना-लिखना सीख रहे हैं उसका मौखिक उपयोग करने के ढेरों मौक़े साथ-साथ मिलते रहें। वैसे अगर बच्चे को चहचहाहट शब्द पता होगा तो एक-दो बार उस शब्द को देखने पर वह पूरा ही बोलेगा, ऐसा मेरा मानना है।

इसी तरह 'बुकनी' वाले उदाहरण में बच्ची से उपयुक्त सवाल पूछना, और उसे सोचने का समय देने और उस शब्द से जुड़े धाँस जैसे

शब्द पर ध्यान दिलाने से वह समझ गई कि बुकनी का मतलब क्या होगा।

व्यक्तिगत रूप से मैं ऊपर वाले उदाहरणों में सिर्फ़ नदी वाली ग़लती को सुधारने पर काम करूँगी, वो भी इसलिए क्योंकि नदी वाली ग़लती में अवधारणा की गड़बड़ी है। नदी वाले उदाहरण में बच्चे इंसानों के जन्म को नदी के जन्म से जोड़ रहे हैं... बाक़ी की ग़लतियाँ मुझे ग़लतियाँ नहीं लगतीं। वैसे भी एक तरफ़ तो हम कहते हैं कि बच्चों की भाषाओं का सम्मान करना चाहिए जिसका एक उदाहरण मम्मी को माँ पढ़ना है वहीं दूसरी ओर उसी को सुधारना भी चाहते हैं और वो भी सीधा पढ़ने में। ये ग़लतियाँ (माँ, कोंकड़ा) आने वाले समय में अपने-आप ही सुधर जाएँगी जब बच्चे ज़्यादा लोगों से 'मम्मी' और 'बगुला' जैसे शब्दों को सुनेंगे क्योंकि बच्चे बाक़ी बहुत-से शब्दों को 'सही' पढ़ रहे हैं।

कक्षाओं में अर्थ पर ध्यान कम ही जाता है। किसी भी टैक्स्ट को पढ़ने के बाद बच्चों से यह नहीं पूछा जाता कि उन्होंने जो पढ़ा है उसके बारे में वे अपने शब्दों में बताएँ। बच्चे ने यदि लिखित संकेतों को हूबहू बोलकर बता दिया तो मान लिया जाता है कि वह पढ़ना सीख गया है। बच्चे बिना अर्थ के पढ़ रहे हैं, यह तब पता चलता है जब वे उतने ही प्रश्नों के उत्तर दे पाते हैं जितने पाठ से सीधेतौर पर प्राप्त किए जा सकें। जिन प्रश्नों में अनुभव जोड़ने की ज़रूरत होती है उन प्रश्नों के उत्तर वे नहीं दे पाते। और ऐसा सभी विषयों की कक्षाओं में दिखता है। जैसे गणित में इबारती प्रश्नों को यदि शिक्षक पढ़कर बता देते हैं तो बच्चे हल कर लेते हैं पर स्वयं पढ़कर प्रश्न हल नहीं कर पाते।

शिक्षकों के काम का एक बहुत ज़रूरी हिस्सा बच्चों और उनके काम का अवलोकन करना है। और अवलोकन के बाद वे सीखने में कहाँ और कैसी मुश्किल का सामना कर रहे हैं उसपर और उसके हल पर चिन्तन। और फिर जो भी हमने सोचा उसको बच्चों के साथ करना और फिर समझना व फिर सोचना। यह सिलसिला असल में चलता ही रहता है। लेकिन समाज ने और कुछ हद तक प्राथमिक कक्षा के शिक्षकों ने भी यही मान लिया है कि प्राथमिक कक्षा में तो बच्चों को मात्र a, b, c, d; 1, 2, 3, 4; क, ख, ग, घ ही तो याद करवाना है। मुझे लगता है कि इस समझ को अब हमें पुरज़ोर चुनौती देनी है।

मीनू पालीवाल अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन में 2017 से काम कर रही हैं। आप फ़ेलोशिप प्रोग्राम के ज़रिए अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन से जुड़ीं। इससे पहले उन्होंने 6 वर्ष आईसीआईसीआई बैंक में काम किया। वे अपने मन में आने वाले सवालों की तलाश में शिक्षा और शिक्षण प्रक्रिया से जुड़ीं। प्राथमिक कक्षाओं में बच्चों के साथ काम करना उन्हें अच्छा लगता है।

सम्पर्क : meenu.paliwal@azimpremjifoundation.org

कक्षा में ‘कन्यादान’ कविता के हिस्सों को पढ़ना

शचीन्द्र आर्य

कक्षाओं में कविताओं का पढ़ाया जाना किसी चुनौती से कम नहीं। ख़ासकर बड़ी कक्षाओं में, जहाँ बच्चों के पास बहुत अलग-अलग सन्दर्भ होते हैं और धारणाएँ व मान्यताएँ भी। ऐसे में कविता में आए पात्र, शब्द, मूल्य और वक्तव्य बच्चों के बीच जिन छवियों का निर्माण करते हैं उनसे शिक्षक को उसके अर्थ निर्माण में मदद तो मिलती है लेकिन यह इतना विविध होता है कि उसे समेटना आसान नहीं। कविता के लेखक का सन्दर्भ और आज के बच्चों का सन्दर्भ कई बार बहुत अलग-अलग होता है। लेकिन यह प्रक्रिया कक्षा में चर्चा के मौक़े देती है। बच्चों के अनुभवों को उभरने के मौक़े देती है। प्रस्तुत आलेख एक ऐसी ही कक्षा का अनुभव दस्तावेज़ है। सं.

पूर्वपीठिका

कोई भी रचना, अपने-आप में एक ही ‘अर्थ’ को पाठक के सामने खोले, ऐसा कभी नहीं होता। हमारे निजी अनुभव भी उस ‘पाठ’ को हमारे अन्दर बनाते हैं। यहाँ ‘पाठ’ का अर्थ, पाठक द्वारा किसी रचना को पढ़कर उसका ‘अर्थ’ निर्मित करना है। यह पाठक की अपनी समझ और कौशल पर निर्भर है कि वह उसके किन सन्दर्भों को अपने अर्थ निर्माण के लिए महत्त्वपूर्ण समझे और किनको छोड़ दे। यह पूरी प्रक्रिया और अर्थ की प्राप्ति ही ऐसे अलग-अलग ‘पाठ’ को बनाते हैं। एक पाठक से इतर दूसरे पाठक तक जाते ही कोई रचना एक ही अर्थ को सम्प्रेषित करे, ऐसा नहीं है। इसके बावजूद, उस रचना का एक ऐसा अर्थ या पाठ ज़रूर होता है कि आप उसमें अन्तर्निहित संवेदना या भाव तक ज़रूर पहुँचते हैं।

हम यहाँ भाषा की पाठ्यपुस्तक से एक कविता के सम्बन्ध में चर्चा करने वाले हैं। इस चर्चा के केन्द्र में कक्षा 10, हिन्दी के लिए एनसीईआरटी की पाठ्यपुस्तक, *क्षितिज* भाग-दो में सम्मिलित की गई कवि ऋतुराज (जन्म : 1940) की कविता ‘कन्यादान’ है।

अर्थ निर्धारण का प्रयास

पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति द्वारा जब कक्षा 10 के विद्यार्थियों के लिए कविता का चयन

किया गया होगा, तब उसके सदस्य इस 'अर्थ' पर आम राय बनाने में ज़रूर सहमत होंगे कि यह रचना, स्त्री-जीवन के रूढ़िवादी स्वरूप को उनके सामने प्रकाशित करेगी, जिसमें विवाह के बाद पति के घर (या ससुराल) जाना उसके जीवन में आमूलचूल परिवर्तनों का निर्णायक कारक बनता है। पाठ्यपुस्तक में 'कन्यादान' कविता के रचयिता ऋतुराज के जीवन परिचय के बाद कविता को पढ़ने से पहले उसके बारे में कुछ संकेत किए गए हैं, जिनमें कहा गया है कि :
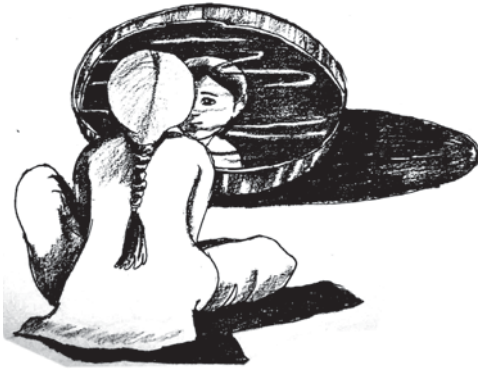
चित्र : हीरा धुर्वे

"कन्यादान कविता में माँ बेटी को स्त्री के परम्परागत 'आदर्श' रूप से हटकर सीख दे रही है। कवि का मानना है कि समाज-व्यवस्था द्वारा स्त्रियों के लिए आचरण सम्बन्धी जो प्रतिमान गढ़ लिए जाते हैं वे आदर्श के मुलम्मे में बन्धन होते हैं। 'कोमलता' के गौरव में 'कमज़ोरी' का उपहास छिपा रहता है। लड़की जैसा न दिखाई देने में इसी आदर्शीकरण का प्रतिकार है। बेटी माँ के सबसे निकट और उसके सुख-दुख की साथी होती है। इसी कारण उसे अन्तिम पूँजी कहा गया है। कविता में कोरी भावुकता नहीं बल्कि माँ के संचित दुखों की पीड़ा की प्रामाणिक अभिव्यक्ति है। इस छोटी-सी कविता में स्त्री-जीवन के प्रति ऋतुराजजी की गहरी संवेदनशीलता अभिव्यक्त हुई है" (2020: 49)।

कविता को पढ़ने से पहले, कविता के बारे में कहा गया यह पूर्व कथन विद्यार्थियों और अध्यापक के लिए कविता का परिप्रेक्ष्य या भूमिका बनाने में कितना मददगार होता है, यह कहना कक्षा में जाए बिना सम्भव नहीं है। इस पूर्व कथन को एक विशेष दिशा की तरफ़ ले जाने की एक कोशिश के रूप में देखा जाना चाहिए। यह भूमिका 'संकेत' के रूप में कक्षा के भीतर हमेशा उपस्थित हो, यह ज़रूरी नहीं है लेकिन यह उस एक प्रमुख अर्थ की तरफ़ ले जाने की एक कोशिश ज़रूर लगती है, जो इस कविता के चयन को आधार प्रदान करता है। इसे पाठ्यपुस्तक की सीमा के रूप में रेखांकित करना उचित है कि कविता को पढ़े बिना उसके परिचय में ऐसी बातें कही जा रही हैं, जो अर्थ निर्माण में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं। लेकिन ऐसा नहीं है कि विद्यार्थियों और अध्यापक के बीच कक्षा में होने वाली अन्तर्क्रिया में यह ऐसे ही घटित हो और उसी दिए गए अर्थ की तरफ़ जाए।

एक अध्यापक होने से पहले ख़ुद को अगर एक पाठक के तौर पर देखता हूँ, तब यह कविता, पहली मर्तबा पढ़ने से लेकर आज तक मुझे अपनी तरफ़ खींचती है। जिस तरह से समाज लड़कियों को देखने का अभ्यस्त है, उसके उलट यह पंक्तियाँ अपनी तरफ़ खींचती हैं। पहले-पहल मुझे 'लड़की होना पर लड़की जैसी दिखाई न देना' पंक्ति में 'जालपा' की झलक दिखाई देती थी। 'जालपा' प्रेमचंद के उपन्यास *ग़बन* में अपने पति से आभूषणों और गहनों की लालसा प्रकट करती है। उसका पति जहाँ काम करता है, वहाँ ग़बन हो जाता है और बड़े ही नाटकीय अन्दाज़ में वह कहीं चला जाता है और ग़ायब हो जाता है। यह कविता कम-से-कम अपने भीतर ऐसी जगह बनाती है, जिसमें माँ अपनी बेटी से संवाद करती है और

उसे लड़कियों के बने साँचे से बाहर निकलने के लिए कहती है। फिर जब कभी 'आग' के सन्दर्भ को देखता हूँ, वह मुझे कृष्ण कुमार की किताब *विचार का* डर से सती 'रूप कँवर' पर लिखे लेख की तरफ़ ले जाती है। इस फ़ेहरिस्त में *सूरज का सातवाँ घोड़ा* उपन्यास की 'जमुना' भी आ जाती है, जिसका विवाह एक दोहजू (जिस पुरुष की पत्नी की मृत्यु हो जाए) से हो जाता है। थोड़ी देर ठहरकर अगर इन सभी चरित्रों पर ग़ौर करूँ, तब यह कविता के बाहर छिटके हुए सन्दर्भ लगने लगते हैं, जिन्हें पहले किसी रचना में पढ़ लेने के बाद वह दिमाग़ में रह गए हैं। इसे ऐसे भी कहा जा सकता है कि किसी कृतिकार द्वारा रची गई एक दुनिया के समानान्तर दूसरी रचनाओं में आए चरित्र अपनी जगह बना लेते हैं, जिनमें असल ज़िन्दगी के हवालों का सिरे से अभाव है। यह कमी दरअसल मेरे साहित्यिक मन की है। बहरहाल।

कितना प्रामाणिक था उसका दुख
लड़की को दान में देते वक़्त
जैसे वही उसकी अन्तिम पूँजी हो

लड़की अभी सयानी नहीं थी
अभी इतनी भोली सरल थी
कि उसे सुख का आभास तो होता था
लेकिन दुख बाँचना नहीं आता था
पाठिका थी वह धुँधले प्रकाश की
कुछ तुकों और कुछ लयबद्ध पंक्तियों की

माँ ने कहा पानी में झाँककर
अपने चेहरे पर मत रीझना
आग रोटियाँ सेंकने के लिए है
जलने के लिए नहीं
वस्त्र और आभूषण शाब्दिक भ्रमों की तरह
बन्धन हैं स्त्री जीवन के

माँ ने कहा लड़की होना
पर लड़की जैसी दिखाई मत देना।

कक्षा में कविता

इस कविता को हर साल कक्षा में विद्यार्थियों के साथ पढ़ना अपने-आप में बहुत मानीखेज है। इसे देखने के लिए हम कक्षा में इस कविता को पढ़ते हुए कुछ कक्षा अनुभवों पर दृष्टि डालेंगे। हिन्दी के अध्यापक के रूप में मेरे पास जो कक्षाएँ हैं, उनमें लड़के और लड़कियाँ दोनों हैं। कविता को कक्षा में बच्चों के साथ पढ़ते हुए बहुत रोचक दृष्टिकोण सामने आते हैं। उनपर जाने से पहले बॉक्स में लिखी इस कविता को पढ़ लेना उचित होगा।

जब कक्षा में विद्यार्थी इस कविता को पढ़ते हैं, तब हर साल उनसे इस प्रश्न पर बात शुरू होती है कि कवि ऋतुराज ने यह कविता कब लिखी होगी? क्या इसमें जो यह 'लड़की' है, वह उनकी बहन, बुआ, बेटी है? यह कविता उन्होंने उसकी शादी के बाद, विदाई के अनुभव से गुज़रने के बाद लिखी होगी?

साहित्यिक शब्दावली में क्या यह उनका 'भोगा हुआ यथार्थ' है या वह अपने आसपास कहीं से देखे हुए अनुभव से उपजी भावुक बात को कह रहे हैं? कक्षा में अध्यापक और विद्यार्थियों के लिए इन प्रश्नों से किसी उत्तर तक पहुँचने की कोई ज़रूरत नहीं है। यह कल्पना के ज़रिए उत्तरों के रिक्त स्थानों को सम्भावनाओं से भरना है। इस रिक्तता और अवकाश में रचना प्रक्रिया पर बात हो सकती है।

कक्षा में छात्राओं के लिए यह बहुत ही कठिन अनुभव है कि वह अपनी बड़ी बहन के विवाह के बाद के क्षणों को कवि की तरह लिखने का प्रयास करें। इतना ही नहीं, उनके अनुसार लड़की की विदाई घर के पुरुषों के लिए भी बहुत द्रवित कर देने वाला क्षण होता है। उनके पिता, भाई और मामा आदि के लिए इस क्षण को याद करना भी भावुक कर जाता है। विद्यार्थियों के अनुसार, जिसमें छात्र और छात्राएँ दोनों सहमत थे, कवि ने ऐसी किसी घटना को याद करते हुए उस क्षण के बीत जाने के बाद ही यह कविता लिखी होगी।

एक सत्र में इस कविता को विद्यार्थियों के साथ पढ़ते हुए ऐसा अवसर आया, जब एक छात्रा ने इस बात को बहुत सलीक़े से कहा कि कविता पढ़ते हुए उसे दुख का अनुभव नहीं हुआ। उसे दुख इस बात से हुआ कि कविता को पढ़ते वक़्त, उसे अपनी बड़ी बहन की विदाई याद आ गई। घर में सब कितना रो रहे थे! यही वह बिन्दु है, जिसपर ग़ौर किया जाना चाहिए। कवि जिस विदाई के क्षण को कह रहा है, वह तो पहले से हमारे अन्दर है। इस विदाई के अवसर पर होने वाला यह दुख भी पहले से हमारे भीतर मौजूद है। यहाँ कविता कक्षा के विद्यार्थियों को अपने अनुभवों की तरफ़ ले जाती है। वह अपने निजी क्षणों को कविता में दिए गए कथ्य से मिला रहे हैं। छात्रा द्वारा कही गई बात रस की निष्पत्ति की ओर संकेत कर रही है। फ़िलहाल उस विस्तार में न जाते हुए आगे बढ़ते हैं।

छात्राएँ कविता में 'सयानी' शब्द को बहुत बारीक़ी से देखती हैं और कहती हैं, "सरजी! उस लड़की की उम्र क्या हमसे भी छोटी थी?" दूसरी छात्रा ने पूछा, "क्या यह 'बाल विवाह' था सरजी?" इसपर कक्षा के एक छात्र ने पूछा, "तब कवि ने उन्हें रोका क्यों नहीं सर? हम होते तो ज़रूर पुलिस को बता देते।" विद्यार्थी 'कम सयानी' का जो अर्थ ले रहे हैं, वह है उसका समझदार न होना या कम समझदार होना। वह तो यह बात बल देकर कहते हैं, जब वह सयानी नहीं है तब अपनी माँ द्वारा बताई जा रही इतनी बड़ी-बड़ी बातें कैसे समझ पाएगी? कुछ तो ऐसे भी विद्यार्थी होते हैं, जो कहते हैं, "हम भी नहीं समझ पा रहे सरजी! 'लड़की तो लड़की की तरह ही दिखेगी, वह लड़की की तरह नज़र नहीं आए', कैसे?"

इस अन्तिम प्रश्न पर हर बार बहुत देर ठहरकर सोचने की ज़रूरत महसूस होती है। कवि ने कितने साल पहले यह कविता लिखी, इसका कोई अन्दाज़ा एक अध्यापक के तौर पर मुझे नहीं है। लेकिन जब यह कविता आज कक्षा में विद्यार्थियों के सामने आती है, तब वह संचार माध्यम से घिरी हुई दुनिया में बड़े हो रहे हैं। उनके पास बहुत सारे स्रोत हैं, जिसने उनके अनुभव संसार को विस्तार दिया है। टेलीविज़न अब बहुत पीछे छूट गया माध्यम है। स्मार्टफ़ोन ने इस दुनिया को बहुत बड़ा कर दिया है। वह कहते हैं, जितने भी धारावाहिक हैं, उनमें तो बहुएँ गहनों में लदी होती हैं। कितना सारा तो 'मेकअप' वह करे रहती हैं। बॉलीवुड की बम्बईया फ़िल्मों को चमक-दमक के साथ देखते हैं। कितने सारे सौन्दर्य प्रसाधन विज्ञापन की शक्ल में बाज़ार में मौजूद हैं। लड़कियों के अलावा अब तो लड़कों के लिए भी कितने सारे उत्पाद बड़ी कम्पनियाँ बनाने लगी हैं। तो क्या इतना कहना पर्याप्त होगा कि कवि जिस तरह की लड़की बनने का प्रस्ताव दे रहे हैं, वह आज के लड़कों के लिए भी उतना आसान नहीं रह गया है। किशोरावस्था से गुज़र रहे विद्यार्थियों के लिए इस बात को कैसे समझाया जाए, यह सवाल एक चुनौती की तरह एक अध्यापक के रूप में मेरे सामने आता है।

अध्यापक की हैसियत से क्या कर सकते हैं हम ?

उनके लिए तो यह शब्द भी बहुत आपत्तिजनक है कि 'दान' तो हम ख़रीदी हुई चीज़ों का कर सकते हैं, एक जीती-जागती लड़की को कोई कैसे 'दान' कर सकता है?

मेरी दृष्टि में इस सवाल के आने के बाद यह कविता उसी रूढ़िवादी छवि को पुष्ट करती हुई प्रतीत होती है। कविता का परिचय जो कविता के पहले पाठ्यपुस्तक में दिया गया है, वह भले इस कविता को एक रूढ़िवादी समाज की परतों की ओर इंगित करता है लेकिन 'कन्यादान' शब्द उसे परोक्ष रूप से उस ओर ले जाता है। कविता में लड़की को 'अन्तिम पूँजी' कहकर कवि द्वारा 'कम सयानी' लड़की को 'पण्य' या ख़रीदे और बेचे जाने योग्य वस्तु में बदल देना नहीं है?

हर साल इस कविता को पढ़ाते हुए यह बात विद्यार्थियों की तरफ़ से मेरे सामने आती है कि भले यह विदाई का पल हो, पर यह कैसी माता है, जो इस भावुक क्षण में 'रूप', 'गहने' और 'आग' जैसी चीज़ों के बारे में अपनी बेटी को चेता रही है? क्या उसे पहले कभी ऐसी बातों के लिए समय नहीं मिला? कभी-कभी कक्षा में ही इस प्रश्न का यह उत्तर आ जाता है, "पहले भी बताई होंगी, पर इस वक़्त वह उसे दोबारा से याद करवा रही है।" इसपर दूसरे छात्रों की प्रतिक्रिया देखने को मिलती हैं, "... तो क्या सर, उसकी माता ही सारी बातें बताएँगी, उसके पिता कहाँ हैं, वह कुछ नहीं कहेंगे...?"

यह चर्चा के दौरान एक और महत्त्वपूर्ण बिन्दु है, जिसमें कविता के ज़रिए कवि रूढ़िवादी समाज की आलोचना करते हुए भी उसी रूढ़िवादी समाज की जेंडर भूमिकाओं को पुष्ट करते हुए लगते हैं। विद्यार्थियों का यह अवलोकन बिलकुल सटीक है, जहाँ वह पिता की अनुपस्थिति को चिह्नित करते हैं। प्रश्न है, विदाई के समय लड़की के पिता कहाँ हैं? इसका कोई एक उत्तर नहीं हो सकता। वह कहीं शामियाने वाले और हलवाई के पैसों का हिसाब बाद में भी कर सकते थे। यह सम्भावना विद्यार्थी प्रकट करते हैं। एक बार एक छात्रा ने कहा, "वह सबके सामने रोते हुए दिखना नहीं चाहते होंगे। सबके सामने वह रोते हुए कैसे लगते? इसलिए वह किसी कमरे में बैठे सुबक रहे होंगे।" कई विद्यार्थी इसपर सहमत भी हो जाएँ, पर कवि ने इस कविता में जो स्थान लड़की की माँ को दिया उतना लड़की के पिता को नहीं मिला।

इस विदाई पर कई छात्र तो इस ओर भी संकेत करते हैं, "क्या ऐसा कहना ठीक है, कि लड़कियाँ ही अपनी माता के ज़्यादा निकट होती हैं, बेटे नहीं हो सकते क्या सरजी?" विद्यार्थियों के प्रश्नों की सहायता से देखते हुए यही लगता है कि कविता में पिता की ग़ैर-मौजूदगी समाज में व्याप्त जेंडर भूमिकाओं का पुनरुत्पादन अधिक है। वह मूल्य जो कविता सम्प्रेषित कर रही है, उसमें विद्यार्थी अपने अर्थ भर रहे हैं। उनके कविता के इस 'पाठ' या 'अर्थ प्राप्ति' को नज़रअन्दाज़ नहीं किया जा सकता है। आपको कक्षा में रहते हुए उनके प्रश्नों का जवाब देना है, और एक क्षण ऐसा आता है जब अध्यापक के तौर पर हमें यह मानना पड़ता है कि कविता इस ओर भी जा रही है।

चित्र : हीरा धुर्वे

कक्षा में इतनी सारी बातों के बाद, जब हम लोग कविता की पंक्तियों को इतना उधेड़ चुके होते हैं कि प्रश्न अभ्यास पर नज़र डालने से लगता है, यह भी उसी एक प्रचलित पाठ की तरफ़ ले जाना

चित्र : हीरा धुर्वे

चाहता है, जिसे पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति ने कविता के परिचय में बाँध दिया है। प्रश्न अभ्यास से गुज़रना ऐसा लगता है, मानो पूरी प्रक्रिया रूढ़िवादी समाज की छवि को बहुत रूढ़ हो चुके बिम्ब, प्रतीक और भाषा से बाँधती है– विदाई, रूप-सौन्दर्य, दहेज, आग में जल जाने वाली बहुएँ। ऐसा नहीं है कि कविता केवल इतनी बात करती है। इसमें इनके अलावा भी बहुत सारे प्रस्थान बिन्दु हैं, जिनको लाए बिना यह कविता की अधूरी समझ को पोषित करेगी। इसी वजह से हर बीतते साल जब यह कविता कक्षा में आती है, तब-तब यह एहसास होता है कि इस कविता को पढ़ाना कितना मुश्किल काम है। कितने सारे अर्थों और पाठों को अपने अन्दर से बाहर निकालती यह कविता इसलिए भी मुझे बेहद पसन्द है। हर सत्र में इसका इन्तज़ार करता हूँ, कब इसकी बारी आएगी और इस बार के विद्यार्थी इसे किस तरह समझते हैं।

लेख का पहला चित्र एनसीईआरटी की पाठ्यपुस्तक, *क्षितिज* भाग दो से साभार।

सन्दर्भ

पाठ्यपुस्तक, *क्षितिज* भाग दो, एनसीईआरटी (2020), नई दिल्ली।

शचीन्द्र आर्य ने दिल्ली विश्वविद्यालय के शिक्षा विभाग (सीआईई) से 'ग्रामीण परिप्रेक्ष्य में आधुनिकता और शिक्षा की अन्तर्क्रिया' विषय पर शोध कार्य किया है। आपके *'ईपीडब्लू', 'शिक्षा विमर्श'* और *'पाठशाला भीतर और बाहर'* में शोध लेख प्रकाशित हुए हैं। शचीन्द्र की कहानियाँ और कविताएँ साहित्यिक पत्रिकाओं *हंस, पहल, वागर्थ* और *समकालीन भारतीय साहित्य* आदि में प्रकाशित हुई हैं।

सम्पर्क : shachinderarya@gmail.com

सिर्फ़ मेला नहीं, विज्ञान भी आसपास के जन मुद्दे भी शामिल

माया मौर्य

प्रस्तावना

विज्ञान केवल एक विषय ही नहीं है बल्कि अपने-आप में एक सम्पूर्ण दुनिया है, यह कहना बिलकुल भी ग़लत न होगा कि "ज्ञान का वह स्वरूप जिसमें क्रम की प्रधानता हो, विज्ञान कहलाता है", अर्थात किसी भी प्रकार का क्रमबद्ध व व्यवस्थित ज्ञान ही विज्ञान है, फिर चाहे वह मानव सम्बन्धित हो, समाज सम्बन्धित या फिर पृथ्वी सम्बन्धित, जीवन की प्रत्येक इकाई में विज्ञान समाहित है। विज्ञान में केवल पढ़ना या लिखना भर नहीं है बल्कि ख़ुद करके अनुभव प्राप्त करना, प्रेक्षणों का अवलोकन, तर्क संगतता व निरन्तर उसमें होने वाले बदलाव की स्वीकार्यता भी शामिल है। इस नज़रिए के अनुरूप विज्ञान विषय पर काम हो पाए इसके लिए स्कूल द्वारा विज्ञान मेले का आयोजन किया गया था। विज्ञान को पढ़ना, समझना और उसे अपने रोज़मर्रा के जीवन में खोजना व उपयोग करना इस मेले का मुख्य उद्देश्य था।

विज्ञान मेले की रणनीति

हर बार की तरह इस बार भी विज्ञान मेले के आयोजन का कार्यक्रम तय था। अब के विज्ञान मेले में कुछ फ़र्क़ था, और फ़र्क़ यह था कि पहले शिक्षक ही हर कॉर्नर का संचालन करती, बच्चों के साथ तय कॉन्सेप्ट पर गतिविधियाँ करवाती हुई बच्चों में समझ विकसित करवाती थीं। पर इस बार बच्चों के साथ मिलकर तय किया गया कि इस मेले का आयोजन दो दिन के लिए रखें जिसमें एक दिन शिक्षक और दूसरे दिन बच्चे अपने मॉडलों की प्रस्तुति रखें। साथ ही जो भी अवधारणा उन्होंने क्लास में पढ़ी, समझी और प्रयोग करते हुए सीखी, उसका उपयोग भी करें।

मेले की तैयारी में बच्चों की भूमिका

किताब में पढ़े विज्ञान के पाठों, मसलन, चुम्बक, करंट, जैविक खाद आदि को प्रयोग द्वारा समझा और विस्थापन जैसे कुछ मुद्दों को फ़ील्ड में जाकर नज़दीकी से समझते हुए भारत में चल रहे स्मार्ट सिटी के प्रोजेक्ट से होने वाले फ़ायदे और नुक़सान पर चर्चाएँ कीं और उसे ही परियोजना का हिस्सा बनाया। बच्चों के बड़े समूह में जब चर्चा की, कि हम इस तरह का विज्ञान मेला सोच रहे हैं, तो बच्चे बहुत उत्सुक दिखे क्योंकि बच्चे भी कुछ सृजनात्मक और अभिनव करना चाह रहे थे। कक्षा छठवीं से आठवीं के बच्चों ने अपने-अपने मॉडलों की थीम सोचकर, कि उसे कैसे बनाएँगे, कौन क्या बनाएगा, सामान क्या-क्या चाहिए होगा, सामान मँगाया और कुछ सामान की जुगाड़, कबाड़ से करने का तय किया। बस, फिर क्या था बच्चों ने अपना-अपना काम ज़ोर-शोर से शुरू कर दिया। बच्चे अपने-अपने समूह के काम में पूरी शिद्दत से मसरूफ़ थे। अपने शिक्षकों से भी ज़रूरत अनुसार चर्चा करते रहे। अब वक़्त था पढ़े हुए ज्ञान और समझ का वास्तविक उपयोग करना।

शिक्षक द्वारा संचालित कार्नर

विज्ञान मेले का पहला दिन

हमारे स्कूल में पहली से तीसरी कक्षा तक के बच्चों के साथ 'मज़े-मज़े में विज्ञान के खिलौने' बनाने का काम किया जिसमें कबाड़ से जुगाड़ वाले वेस्ट मटेरियल का पुनः उपयोग किया गया। बच्चों ने सामान भी स्वयं ही इकट्ठा किया।

1. जादुई माचिस : यह खिलौना, माचिस और दो रंगों के धागे से बना हुआ है। शुरुआत में बच्चे इसे जादू समझ रहे थे क्योंकि माचिस के आगे-पीछे होने पर उन्होंने धागे का रंग बदलते देखा। जब बच्चों से पूछा गया कि ऐसा क्यों हो रहा है, बच्चों ने अनुमान लगाया कि माचिस बॉक्स में रंग होगा। किसी ने कहा कि इसमें दो रंगों के धागे होंगे। बच्चे एक दूसरे की मदद कर रहे थे।

2. केलाइडोस्कोप : बच्चों को जब केलाइडोस्कोप में देखने को कहा गया तो बच्चों को रंग-बिरंगी आकृतियाँ देखने में बहुत ख़ुशी हो रही थी और मज़ा भी आ रहा था।

खनक ने पूछा, "दीदी, इसको कैसे बनाया है? बहुत प्यारा दिख रहा है।" बच्चों ने ध्यान से निर्देश सुने और केलाइडोस्कोप बनाने में लग गए। दिव्या ने खनक से कहा, "तूने एक चूड़ी का टुकड़ा बड़ा डाला है इसलिए डिज़ाइन नहीं बन रहा है।" इस प्रकार बच्चे एक दूसरे को अपना केलाइडोस्कोप बनाकर दिखा रहे थे और मार्गदर्शन कर रहे थे। सभी बच्चे एक से बढ़कर एक सुन्दर आकृति को देखने में मग्न हो गए। 'ये मेरा देख', 'ये मेरा देख', सब बच्चों की आवाज़ क्लास में गूँजने लगी। इसी तरह बच्चों ने फ़व्वारा भी बनाया जो हवा के दबाव पर आधारित था। बच्चों ने खेल-खेल में कुछ सरल अवधारणाएँ भी समझीं।

बच्चों को माचिस में छेद करने, काँच की स्ट्रिप को सटाकर एक दूसरे पर लगाने, आदि में थोड़ी मुश्किल भी हुई। पर बच्चों के यही

प्रयास उन्हें सीखने के लिए प्रेरित कर रहे थे। सामूहिक भावना से किया गया काम उन्हें लगन और धैर्य में बाँधे रख रहा था।

ख़ास बात यह कि बच्चों ने सीखी चीज़ों को बस्ती के अन्य दोस्तों को भी सिखाया।

कक्षा चौथी से आठवीं तक के बच्चों को चार समूहों में विभाजित किया।

इन कक्षाओं के लिए पहले दिन के चार कार्नर इस प्रकार थे :

1. चुम्बक, 2. फूलों की संरचना, 3. विद्युत परिपथ, और 4. घूमती दुनिया (ग्रह)।

प्रत्येक कार्नर में विषय की गम्भीरता और बच्चों से उसकी समझ को साझा करते हुए छोटे-छोटे क्रियाकलापों की मदद से बच्चों को विषय से अवगत कराया। प्रत्येक कार्नर का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :

1. चुम्बक

- सबसे पहले चुम्बक से सम्बन्धित मैग्नस की कहानी सुनाई और चुम्बक व उसके प्रकारों से अवगत कराया।
- मिश्रण देकर उसमें से चुम्बकीय और अचुम्बकीय पदार्थों को अलग करवाया और चुम्बकीय पदार्थ को चुम्बक से चिपकाने को कहा, इससे चुम्बकीय प्रबलता और ध्रुव की समझ बनी।
- ध्रुव के परिचय के बाद स्वतंत्रतापूर्वक लटकाने पर दिशा (उत्तर-दक्षिण) का निर्धारण समझाया।
- एक आलपिन को चुम्बक की सहायता से प्रयोग द्वारा अस्थाई चुम्बक बनाया गया।
- 8 रिंग चुम्बक की सहायता से आकर्षण और प्रतिकर्षण के सिद्धान्त पर पेंसिल को हवा में स्वतंत्रतापूर्वक खड़ा किया।

बच्चों की प्रतिक्रिया

बच्चों ने दैनिक जीवन से जोड़कर कुछ उदाहरण भी दिए। मसलन, उन्होंने बताया कि वो चुम्बक का उपयोग तालाब और नदी से पैसे को निकालने में करते हैं। कुछ ने कहा कि वे सामान बीनते हुए सोने की तरह दिखने वाली कुछ चीज़ों को भी चुम्बक से ही चेक करते हैं। बच्चों ने पिन की सहायता से अस्थाई चुम्बक बनाकर दिशा का पता लगाया व चुम्बक की मदद से पुनः चेक भी किया।

बच्चों ने चुम्बक द्वारा रेत में से लोहे के कणों को अलग किया। यह अनुभव बच्चों के लिए नया था।

हमने सीखा और देखा

कार्नर में बच्चों की अपनी जानकारी को स्थान देते और उसे बढ़ाते हुए चुम्बक की समझ को विस्तार दिया। कार्नर के अन्त में बच्चे चुम्बक के गुण – आकर्षण व प्रतिकर्षण – से, उत्तर-दक्षिण दिशा व ध्रुव, और स्थाई व अस्थाई चुम्बक की जानकारी से परिचित हुए।

2. फूलों की संरचना

- कार्नर की शुरुआत कुछ सवालों से हुई। मसलन, क्या आप जानते हैं कि यहाँ क्या होने वाला है, हम आपको क्या दिखाने वाले हैं, आदि। कुछ बच्चों के जवाब 'हाँ' में और कुछ के 'न' में

आए। फिर बच्चों ने बोला कि कार्नर का नाम 'एक नज़र फूलों पर' है तो फूलों के बारे में ही कुछ होगा।

- कुछ फूलों को दिखाते हुए पूछा कि आप इन फूलों को पहचानते हैं तो नाम बताइए। बच्चे दो फूलों, लाल फूल (गुड़हल) और गेंदा, के नाम बता पाए। बाक़ी के फूल उन्होंने देखे तो थे पर उनके नाम नहीं जानते थे।
- प्रत्येक बच्चे के हाथ में धतूरे का एक-एक फूल दिया गया। फूलों के बाह्य अंगों के साथ अन्दर के अंगों से भी अवगत कराया गया, जैसे– पंखुड़ी, अंखुड़ी, स्त्रीकेसर, पुंकेसर, अंडाशय, आदि।
- नामों से अवगत करने के पश्चात फूलों में होने वाली निषेचन क्रिया को वीडियो के माध्यम से दिखाया गया।

बच्चों की प्रतिक्रिया

बच्चों ने बताया कि उन्होंने फूलों में केवल ख़ुशबू, रंग व डिज़ाइन को ही देखा है और वो भी ज़्यादातर पूजा के समय ही। कुछ ने कहा कि गुलाब के फूलों को उन्होंने किसी के घर से भी मस्ती-मस्ती में चुराया है। फूलों से शहद बनता है वो जानते हैं व उन्होंने अपने दोस्तों को भी फूल दिए हैं।

कॉर्नर में रखे फूलों को देख बच्चे नाम सोच रहे थे। कुछ फूलों के नाम तो वे जानते थे, जैसे– गुड़हल, गेंदा आदि। कुछ-कुछ सब्ज़ियों के फूल भी बच्चों ने देखे हैं।

राधेपाल ने कहा कि फूलों के सभी भाग कितने काम के हैं, यह मुझे पहली बार पता चला है।

वंदना ने आश्चर्य व्यक्त किया कि फूलों में भी नर और मादा होते हैं।

हमने सीखा और देखा

बच्चों ने इस कार्नर के माध्यम से फूल से फल बनने की प्रक्रिया को जिज्ञासापूर्वक समझा। बच्चे फूलों के बाह्य व आन्तरिक अंगों से अवगत हो पाए और इसके साथ ही कुछ रोचक बातें भी बच्चों को समझ में आईं, जैसे– गेंदे का फूल एकमात्र फूल नहीं है अपितु वह फूलों का एक गुच्छा होता है।

3. विद्युत परिपथ

- विद्युत परिपथ और विद्युत से परिचित करवाते हुए विद्युत से चलने वाले उपकरणों पर चर्चा करना।
- परिपथ में प्रयोग की जाने वाली चीज़ों को अवलोकन और सामग्रियों से परिचय करवाना।
- सामूहिक रूप से एक साधारण विद्युत परिपथ (सर्किट) तैयार करवाना।
- धनात्मक और ऋणात्मक आवेश पर

चर्चा करके बल्ब जलाने में आवेशों के महत्त्व को समझाना।

- सुचालक और कुचालक बताना।
- बच्चों द्वारा ही सुचालक और कुचालक वस्तुओं की पहचान करवाना।

बच्चों की प्रतिक्रिया

बच्चों ने बताया कि घरों में अर्थिंग और फेस से ही लाइट जलती है, यदि दोनों में से कोई एक न हो तो लाइट नहीं जल पाएगी। सेल में प्लस-माइनस के निशान होते हैं और जीभ से छूने पर जीभ झनझनाने का मतलब है कि सेल चालू है। लोहे की चीज़ों में करंट जल्दी फैलता है।

हमने सीखा और देखा

- बच्चों ने जाना कि बल्ब जलाने के लिए हमें धन और ऋण आवेशों की ज़रूरत होती है, अर्थात अर्थ फेस का होना अनिवार्य है।
- प्रयोग करके जाना कि हमारे द्वारा पहनी रिंग, कंगन, चैन, अँगूठी, पिन, सुई जैसी लोहे, चाँदी आदि धातुओं से बनी वस्तुएँ विद्युत सुचालक होती हैं।
- कुचालक का मतलब भी हम अच्छे-से समझ पाए, अर्थात कोई भी धातु या वस्तु, जो करंट प्रवाहित करने या बल्ब जलाने में मददगार नहीं है, कुचालक होगी।

4. घूमती दुनिया

- हमने बच्चों के साथ सौर प्रणाली को समझना और समझाना तय किया। इसमें हमने 3 उप विषय चुने :
  - दिन और रात;
  - सूर्य ग्रहण और चन्द्र ग्रहण; और
  - पृथ्वी का घूर्णन और सूर्य का परिक्रमण।

सेट-अप : हमारे इस उद्देश्य में सेट-अप की बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। दिन-रात, सूर्य ग्रहण व चन्द्र ग्रहण और पृथ्वी का घूर्णन व सूर्य की परिक्रमा, तीनों ही विषयों के लिए कमरे में अँधेरा किया और ग्लोब, टॉर्च एवं नक़्शे के द्वारा इन घटनाओं पर समझ बनाने की कोशिश की गई।

बच्चों की प्रतिक्रिया

बच्चों से यह पूछने पर, कि सूर्योदय और सूर्यास्त के समय आपको आसमान में क्या दिखता है, उन्होंने अपने अवलोकन साझा किए। उन्होंने एक माह तक चाँद की रोज़ की घटती-बढ़ती आकृति को कॉपी में नोट किया, इससे पृथ्वी के घूमने को अच्छे-से समझने में आसानी हुई। बच्चों ने सूर्य ग्रहण और चन्द्र ग्रहण के बारे में प्रश्न भी पूछे। उन्होंने बस्ती में सूर्य ग्रहण और चन्द्र ग्रहण के समय मानने वाले अन्धविश्वास के बारे में भी बताया।

अमन ने पूछा, "दीदी, यह अन्धविश्वास नहीं मानने से नुक़सान होता है क्या?"

बच्चों ने यह भी पूछा कि ग्रहण में बाहर क्यों नहीं निकलना चाहिए। बच्चे सूर्य ग्रहण और चन्द्र ग्रहण के बारे में जानने के लिए बहुत उत्सुक थे। जीनू ने कहा कि यदि हमें अमरीका जाना है तो हम एरोप्लेन से ऊपर एक जगह ही रहें और पृथ्वी तो घूमकर अमरीका वाली जगह पर आ ही जाएगी तब हम उतर जाएँगे, वहाँ जाने की ज़रूरत क्या है? (यह एक महत्त्वपूर्ण

प्रश्न था। लेकिन इसपर तब हमने बात नहीं की।)

हमने सीखा और देखा

बच्चों ने पृथ्वी के परिक्रमण और घूर्णन के अन्तर को समझा। सूर्य ग्रहण और चन्द्र ग्रहण होने का कारण, रात-दिन क्यों होते हैं, और तारे क्यों चमकते हैं, इस बारे में समझ बनाई।

विज्ञान मेले का दूसरा दिन

बच्चों द्वारा बनाए गए चलित मॉडल का प्रस्तुतिकरण : विज्ञान मेले में छात्र-छात्राओं ने अपने-अपने विज्ञान प्रोजेक्ट प्रस्तुत किए। विज्ञान प्रोजेक्ट का उद्देश्य विद्यार्थियों में वैज्ञानिक प्रतिभा को विकसित व प्रोत्साहित करना और उन्हें जनसमुदाय एवं विज्ञान की सम्बद्धता के साथ जोड़कर देखना था कि किस स्थिति में विज्ञान लोगों के हित में काम कर सकता है और कम ख़र्च में अभिनव चीज़ें बनाकर मॉडल के रूप में प्रस्तुत करके नई खोज की ओर बच्चे अग्रसर हों। साथ ही प्रोजेक्ट के माध्यम से अपनी सोच को एक तार्किक ढंग से लोगों को बता पाएँ।

मेले में जीवन शिक्षा पहल स्कूल के माध्यम से छात्र-छात्राओं के द्वारा विज्ञान में अभिरुचि पैदा करने एवं अपनी प्रतिभा प्रदर्शित करने का अवसर प्रदान किया। छात्र-छात्राओं ने प्रदर्शनी के माध्यम से अपनी रचनात्मकता को उकेरा।

इस प्रदर्शनी में जीवन शिक्षा पहल के दसवीं, आठवीं, सातवीं और छठवीं कक्षा के विद्यार्थियों ने प्रदर्शनी और मॉडल बनाए। उन्होंने अपनी रुचि के अनुसार कई प्रोजेक्ट साझा किए। प्रदर्शनी से पहले क़रीब एक महीने की बातचीत से ये निष्कर्ष निकला कि सातवीं कक्षा के विद्यार्थी ज्वालामुखी व पवन चक्की पर, आठवीं के स्मार्ट सिटी पर व छठवीं के विद्यार्थी जैविक खेती पर अपनी प्रदर्शनी लगाएँगे। विषय तय होने के बाद इसकी तैयारी में छात्र-छात्राओं सहित अध्यापकों का भरपूर सहयोग रहा।

स्मार्ट सिटी को लेकर विद्यार्थियों के अपने भिन्न-भिन्न विचार थे। मसलन, बस्तियों को तोड़कर स्मार्ट सिटी बनाई जा रही है; पेड़ों को काटकर सड़क चौड़ी की जा रही है; कई जगह बस्तियों को हटाकर मॉल बनाए जा रहे हैं; बच्चों की पढ़ाई और माता-पिता के रोज़गार छिनते जा रहे हैं; आदि। विद्यार्थियों ने स्मार्ट सिटी बनाने में कुछ चीज़ें कबाड़ख़ाने से चुनीं और कुछ बाज़ार से ख़रीदीं। स्मार्ट सिटी संकल्पना को मॉडल के माध्यम से बारीक़ी से प्रदर्शित किया। यह मॉडल बनाते समय विद्यार्थियों के सामने काफ़ी समस्याएँ आ रही थीं। मसलन, स्मार्ट सिटी में किन चीज़ों को रखें और किनको नहीं, और साथ ही उन चीज़ों के मापदण्ड क्या हों। वहीं स्मार्ट सिटी में जब मेट्रो को भी जोड़ा गया तब विद्यार्थियों ने हूबहू मेट्रो का मॉडल बना दिया। इसका कारण यह भी है कि विद्यार्थियों ने राजधानी दिल्ली में मेट्रो को बारीक़ी से देखा था, फिर जैसे-जैसे विज्ञान मेला नज़दीक आ रहा था, उसमें मॉडल के रखरखाव व मेज़रमेंट को लेकर विद्यार्थियों की सूझबूझ में अध्यापकों का विशेष सहयोग रहा।

इसी प्रकार कक्षा में 'ज्वालामुखी' पाठ को पढ़ाकर बताया गया कि यह एक प्राकृतिक आपदा है और इसके कई

प्रकार हैं। एक पक्की समझ बनाने हेतु इसे भी मॉडल का एक हिस्सा बनाया गया। इस मॉडल के लिए जो सामान चाहिए थे उनकी व्यवस्था ख़ुद के आइडियाज़ और अध्यापकों के सहयोग से ही सम्भव हो पाई। मॉडल कक्षा की ज़रूरत को देखते हुए भी तय किए गए। वैक्यूम क्लीनर का मॉडल बनाने में बच्चों ने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। यह बच्चों की नई सोच थी।

विद्यार्थियों का एक मॉडल को ही अलग-अलग दृष्टि से देखना, फिर सुधारना और अपने प्रश्नों के उत्तरों को खोजना, ये ललक इस प्रदर्शनी के दौरान देखने को मिली। मसलन, जब विद्यार्थियों ने वैक्यूम क्लीनर का मॉडल बनाया तब किसी को समझ नहीं आया कि उसकी पंखुड़ियाँ उल्टी लग चुकी थीं, उसके काम न करने पर विद्यार्थियों के चेहरे पर चिन्ता की लकीरें छा गईं। मगर उन्हीं में से एक विद्यार्थी ने धैर्य से काम लेकर वैक्यूम क्लीनर का मुआयना किया और पाया कि पंखुड़ियाँ उल्टी लगी हुई थीं।

बच्चों के अनुभव

- बच्चों के लिए विज्ञान प्रोजेक्ट का यह पहला अवसर था जब उन्हें अपने हुनर दिखाने का मौक़ा मिला।
- शुरू में बच्चे दुविधा में थे कि इतनी मेहनत करने के बाद मॉडल सही बन भी रहा है या नहीं। बार-बार कोशिश करने पर यह हौसला भी बना कि वे सही कर रहे हैं।
- मंजना ने कहा कि जब पालकों को मॉडल की कार्यप्रणाली बता रहे थे तो थोड़ा नर्वस भी थे क्योंकि इस तरह से सवाल-जवाब का यह हमारा पहला अनुभव था। सामूहिक सहयोग से सवालों के जवाबों को सकारात्मक रूप से दिया। धीरे-धीरे हमारा आत्मविश्वास बढ़ता गया।
- अमन ने कहा कि मैं शुरू में थोड़ा झिझक रहा था कि कैसे समझाऊँगा, पर धीरे-धीरे प्रैक्टिस के बाद मैं अच्छे-से समझा पाया।

पालकों के अनुभव

रूपरानी : "बच्चों ने बहुत अच्छा बनाया है। उन्होंने काफ़ी मेहनत की है। दीदी, आप लोग पढ़ाई के साथ ये चीज़ें भी सिखाते हो।"

पैंसठलाल : "गाँव में इतनी हरियाली है। कोई गन्दगी नहीं है। बच्चों ने कितने अच्छे-से

मॉडल बनाए हैं, पूरी चीज़ें असली लग रही हैं। बच्चे अपनी भाषा में हमको समझा रहे हैं। इनको देखकर अच्छा लग रहा है।"

लता : "बच्चों ने घर पर बोला कि मुस्कान के बच्चे बहुत दिनों से अलग-अलग मॉडल बना रहे हैं, मम्मी तू देखने आना, इसलिए हम आए हैं। मुझे कचरा साफ़ करने वाली मशीन (वैक्यूम क्लीनर) अच्छी लगी। बच्चे ऐसे ही अच्छा-अच्छा सीखें और हमसे आगे निकलें।"

हम शिक्षकों ने क्या सीखा

- बच्चों को भी मौक़े देना चाहिए कि वो ख़ुद से कुछ-न-कुछ प्रोजेक्ट, मुद्दे और मॉडल पर काम करें और ख़ुद उसके बारे में जानकारी एकत्र कर सीखें। किताब के अलावा कुछ ज्ञान समुदाय से अर्जित कर पाएँ।
- मैंने भी विज्ञान के कुछ प्रयोगों को बच्चों के साथ मिलकर सीखा।
- बच्चे अपने ख़ास दोस्तों के बिना भी अलग-अलग समूह में ख़ुश थे और मन लगाकर काम कर रहे थे।
- प्रयोग करने की चाह में किताबों के साथ बच्चों का जुड़ाव देखने को मिला। देर रात तक बच्चे काम करते रहे। बच्चों की सामूहिक भावना ने उनके काम को आसान बनाया। ऐसे काम बच्चों को समय-समय पर देते रहना चाहिए।
- फूलों का कॉन्सेप्ट मेरे लिए भी नया था।

माया मौर्य पिछले 15 साल से मुस्कान संस्था, भोपाल के साथ एक शिक्षिका के रूप में कार्य कर रही हैं। वे बस्ती सेंटर पर कामकाजी और स्कूल ड्रॉपआउट बच्चों को खेल-खेल में मनोरंजक तरीक़े से सीखने-सिखाने का कार्य करती हैं। उन्हें बच्चों के बीच पढ़ाने में ख़ुशी मिलती है और बच्चों से बहुत कुछ सीखती हैं, उन्हें किताबें पढ़ने में रुचि है।

सम्पर्क : mayasom@gmail.com

‘बुढ़िया की रोटी’ कहानी का समाजशास्त्र

नंदा शर्मा

चित्र : 1

अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन ने मध्यप्रदेश में झोला पुस्तकालय की शुरुआत की है। झोला पुस्तकालय की संकल्पना इस उद्‌देश्य से की गई है कि बच्चों को उनकी उम्र व रुचि को ध्यान में रखते हुए पठन सामग्री उपलब्ध करवाई जाए। झोला पुस्तकालय कोई यांत्रिक प्रक्रिया नहीं है। इस झोले में एक सोची-समझी रणनीति के तहत बाल साहित्य व शिक्षकों के लिए शैक्षिक पुस्तकों का चयन किया गया है। इस झोला पुस्तकालय की किताबें बच्चों तक पहुँचाना ही हमारा मक़सद नहीं है बल्कि इनके माध्यम से पढ़ने-लिखने की संस्कृति विकसित करना और कहानी के माध्यम से बच्चों में कल्पनाशीलता, संवेदना, तार्किकता, अभिव्यक्ति और समाज बोध के कौशलों का विकास भी करना है।

झोला पुस्तकालय के इन्हीं उद्‌देश्यों के साथ मैं प्राथमिक शाला जलकोटी पहुँची। जलकोटी गाँव महेश्वर से लगभग 7 किलोमीटर की दूरी पर बसा है। आबादी 1100 के आसपास होगी। रोज़ी-रोज़गार की बात करें तो इस गाँव में खेती-किसानी के अलावा लोग रेत खनन या मकान बनाने के कामों में लगे हैं और गुजरात जाकर मज़दूरी जैसे दूसरे काम भी करते हैं।

मेरे झोले में कई तरह की किताबें थीं, पर दिमाग़ में चल रहा था कि बच्चों के साथ शुरुआत कैसे करूँ। क्योंकि कई दिनों के गैप के बाद बच्चों से मिलने का मौक़ा मिल रहा था।

जब प्राथमिक विद्यालय जलकोटी पहुँची तो शिक्षक व बच्चे धूप में बैठे हुए थे। शिक्षक ने अभी-अभी कविता पाठ करवाया था। कविता के

चित्र : 2

चित्र : 3

आधार पर पहली और दूसरी कक्षा के बच्चों के साथ शब्दों को पहचानने की गतिविधि चल रही थी। तीसरी से पाँचवीं कक्षा के बच्चों को गणित के कुछ सवाल दिए गए थे। मैं बच्चों को देख रही थी। जाड़े में चल रही ठण्डी हवा में धूप ही बचाव का साधन बन पड़ती है। यहाँ पहली से पाँचवीं तक के बच्चे एक साथ ही बैठे हुए थे। इनमें पहली और दूसरी के बच्चों की पढ़ाई का सिलसिला नए सिरे से शुरू हो रहा था और तीसरी से पाँचवीं के बच्चों को 2 साल बाद फिर से पढ़ाई से जोड़ा और अपेक्षित दक्षताओं के क़रीब ले जाया जा रहा है। विविध कक्षाओं के बच्चों को एक साथ जोड़े रखने की चुनौती भी यहाँ थी।

मैंने सर से झोला पुस्तकालय के उपयोग के बारे में जानने की कोशिश की। सर का कहना था कि कहानी तो हावभाव के साथ सुना देते हैं लेकिन कहानी में आए विविध पहलुओं को पहचानकर उनपर चर्चा कैसे करवानी चाहिए, इसमें थोड़ी मदद की ज़रूरत है।

मैंने कहा, "ठीक है। आज हम किसी कहानी की किताब के साथ यह करके देखते हैं। आप मेरे साथ रहिए और बच्चों से बातचीत के महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं को नोट करते चलिए। साथ ही जब आप कोई बात कहना चाहते हों तो बेझिझक कह सकते हैं।"

कहानी से पहले कहानी का माहौल बनाना

मैंने बच्चों के बीच बैठते हुए सवाल किया, "आप सब बाहर क्या कर रहे हो?"

बच्चों ने ज़ोर से चिल्लाकर जवाब दिया, "हम धूप खा रहे हैं।"

मैंने हँसते हुए कहा, "अच्छा! धूप कैसे खा रहे हो? थाली में फैलाकर या कटोरी में उँड़ेलकर।"

बच्चों ने भी मस्ती में जवाब दिया, "पैर पर खा रहे हैं", कुछ ने कहा सिर पर, किसी ने कहा पीठ पर।

मैंने फिर पूछा, "तो आप मुँह से धूप नहीं खा रहे हैं।"

सभी ने चिल्लाकर कहा, "नहीं।"

बच्चों के साथ चर्चा को आगे बढ़ाते हुए मैंने पूछा, "आपको भूख लगती है तो आप क्या-क्या खाते हैं?"

चित्र : 4

बच्चों ने अलग-अलग जवाब दिए, मसलन, रोटी, चावल, दाल, कुरकुरे, चिप्स, बिस्कुट आदि।

मैंने बच्चों से जानना चाहा, "आप लोगों को भूख लगती है तो आप क्या करते हैं?"

बच्चों ने बताया, "हम मम्मी से खाना माँगते हैं, बाज़ार से कुरकुरे या चिप्स ले आते हैं, या फिर कोई फल खा लेते हैं।"

सभी बच्चों में बताने का उत्साह अलग ही दिखाई दे रहा था।

मैंने बच्चों से उनकी मर्ज़ी जानी, "आज हम क्या करें? पहले कहानी सुनें या खेल खेलें?"

बच्चों का जवाब था, "कहानी सुनेंगे।"

चित्र : 5

यह तो मैं साफ़ देख पा रही थी कि बच्चों के शरीर के पोषण के लिए जितनी धूप ज़रूरी है, भूख मिटाने के लिए जितना खाना ज़रूरी है, वैसे ही कहानियों से मानसिक पोषण भी उतना ही ज़रूरी है।

एक लोककथा है 'बुढ़िया की रोटी'। इस कहानी में घटना और संवाद का दोहराव है, जो भाषा सीख रहे बच्चों की काफ़ी मदद करता है। इस कहानी के सभी पात्र बच्चों के आसपास के परिवेश में सहजता से दिखाई देते हैं। बच्चे इनके बारे में कुछ पूर्वज्ञान भी रखते हैं। भाषा में शब्द-वाक्य बनाने के स्तर को पार कर चुके बच्चे अपनी ओर से संवाद बनाने और हावभाव के साथ संवाद की अदायगी कर सकते हैं। कुछ बच्चे सोचकर कहानी को आगे भी बढ़ा सकते हैं। 'बुढ़िया की रोटी' कहानी में मुझे ये सारी सम्भावनाएँ दिखाई दे रही थीं। इसलिए मैंने आज इस किताब को बच्चों के बीच लाने का विचार बनाया।

बुढ़िया की रोटी किताब के लेखक शंकर हैं, चित्रांकन सुबीर राय ने किया है और सीबीटी ने प्रकाशित किया है।

कहानी एक छोटी-सी घटना से शुरू होकर आगे चलती है। एक बुढ़िया अपने लिए एक रोटी बनाती है जिसे एक कौवा ले जाकर पेड़ पर बैठ जाता है और बुढ़िया उस कौवे से गुहार लगाती है कि मेरी रोटी वापस कर दो पर वो उसे रोटी नहीं देता। वो गुहार लगाते हुए लकड़हारे के पास, चूहे और बिल्ली के पास जाती है, ताकि कोई उसकी मदद करे और कौवे पर दबाव बनाकर रोटी वापस दिलवा दे, लेकिन कोई भी बुढ़िया की मदद को तैयार नहीं होता। आख़िरकार वो कुत्ते के पास जाती है जो रोटी दिलवाने में मदद के लिए तैयार हो जाता है। एक बार फिर कुत्ते से बिल्ली-चूहा-लकड़हारा-पेड़-कौवे तक का सफ़र चलता है और बुढ़िया को उसकी रोटी वापस मिल जाती है। किताब के कवर पेज का चित्र दिखाकर मैंने पहली

और दूसरी कक्षा के बच्चों से जानना चाहा कि किताब में क्या कहानी बताई गई होगी। कवर पेज का चित्र देखकर बच्चों ने अन्दाज़ा लगाया।

किसी ने कहा, 'कौवे की कहानी', किसी ने 'पेड़ और कौवा', तो कुछ ने 'बुढ़िया की कहानी', 'बूढ़ी अम्मा की कहानी', 'ग़रीब बुढ़िया', 'प्यासा कौवा' आदि कहा। कुछ ने तो पेड़ और कौवे का अभिनय करते हुए कहानी का नाम बताया।

चित्र : 6

अब मैंने कहानी का टाइटल पेज दिखाया और तीसरी से पाँचवीं के बच्चों को पढ़कर बताने को कहा। कक्षा 5 की रानी ने 'बुढ़िया की रोटी' पढ़ी।

कहानी के बीच कहानी की यात्रा

बच्चे कहानी सुनने के लिए उत्सुक थे। मैंने सभी बच्चों की शामिलियत पुख़्ता करने के लिहाज़ से तय किया कि बच्चों के साथ धीरे-धीरे चित्र दिखाते हुए कहानी शुरू करना है। कक्षा एक और दो के बच्चों से चित्र देखकर यह अनुमान लगाने को कहना है कि क्या हो रहा है और तीसरी से पाँचवीं कक्षा के बच्चे बाद में इसे पढ़कर सुनाएँगे। बीच-बीच में जहाँ अभिनय की गुंजाइश होगी वहाँ मौक़े भी दिए जाएँगे।

चित्र : 7

कहानी शुरू होती है : एक बुढ़िया रोटी बनाती है और कौवा उसे ले जाता है। बुढ़िया अपनी रोटी वापस माँगने के लिए पेड़ से कौवे का घोंसला गिराने को कहती है, पेड़ नहीं सुनता तो लकड़हारे के पास जाकर पेड़ को गिराने को कहती है। लकड़हारा भी मना कर देता है। कहानी आगे बढ़ती है। अगले क्रम में बुढ़िया चूहे के पास जाकर लकड़हारे की कुल्हाड़ी काटने को कहती है। पर चूहा भी नहीं सुनता।

मैंने रुक कर पहली और दूसरी कक्षा के बच्चों से पूछा, "बताओ, बुढ़िया अब किसके पास जाएगी?" बच्चों ने अनुमान लगाते हुए जवाब दिया, "बिल्ली के पास।" मैंने पूछा, "अच्छा ज़रा बताओ, बिल्ली से वो कैसे बात करेगी।"

तभी दूसरी कक्षा की ख़ुशी हाथ जोड़कर अभिनय करते हुए कहने लगी... "म्याऊँ-म्याऊँ बिल्ली मौसी मेरी कौवे से रोटी दिलवा दो, चूहा मेरी बात नहीं सुन रहा है।"

इस तरह कहानी आगे बढ़ती गई और अन्त में कौवा बुढ़िया को रोटी दे देता है। इस सुखद अन्त के साथ कहानी ख़त्म हुई।

कहानी के बाद कहानी पर बात

कहानी पूरी होते ही मैंने बच्चों से एक सवाल किया। आपको कहानी कैसी लगी। बच्चे शान्ति से इस कहानी में डूबकर बैठे दिखे जैसे वो अभी भी इसी के साथ रहना चाहते हों। मैंने थोड़ा रुक कर फिर सवाल किया, "कहानी कैसी लगी?" कुछ बच्चों को बुढ़िया को रोटी मिलने का सन्तोष था तो कुछ कौवे को रोटी न मिलने से निराश थे। किसी ने कहा कि अच्छा हुआ बुढ़िया को रोटी मिल गई तो कुछ ने कहा कि कौवा तो भूखा ही रहा गया।

ऐसा लगा मानो कहानी के अन्त में कक्षा दो भागों में बँट गई हो।

मैंने दूसरा सवाल किया, "आपको कहानी में सबसे अच्छा पात्र कौन-सा लगा और क्यों?"

बच्चों ने कुछ इस तरह अपने विचार बताए:

हमें कुत्ता बहुत अच्छा लगा क्योंकि उसने बुढ़िया की मदद की।

हमें बुढ़िया अच्छी लगी क्योंकि उसने सबसे मदद माँगी और एक कुत्ता भी पाला था जो सबकी मदद करता था।

हमें चूहा अच्छा लगा वो छोटा और बहुत प्यारा-सा था।

हमें तो पेड़ अच्छा लगा, उसने बुढ़िया की रोटी दिलवा दी।

चौथी कक्षा के सागर ने मेरे हाथ में से किताब जल्दी से लेते हुए कहा, "मुझे तो सबसे अच्छा कौवा लगा।"

मैंने जानना चाहा, "क्यों?"

उसने दुख भरे स्वर में कहा, "कौवे को भूख लगी थी तभी तो उसने बुढ़िया की रोटी को उठाया होगा, वरना क्यों उठाता। बुढ़िया तो एक और रोटी बना सकती थी। इससे कौवे को भी खाना मिल जाता। मुझे कौवे का सोचकर इसलिए भी बुरा लग रहा है कि उसने तो रोटी भी नहीं खाई और घोंसला भी टूट गया।"

तभी एक दूसरी बच्ची ने सागर की बात में अपनी बात जोड़ते हुए कहा, "मुझे भी बुढ़िया अच्छी नहीं लगी। उसने पेड़ तक को काटने की बात कर दी, वो भी एक रोटी के लिए। उस पेड़ को कितना दुख होता अगर उसकी डाल कट जाती!"

एक पक्ष कुनाल ने रखा, "चूहे और बिल्ली का तो झगड़ा ही नहीं था पर बुढ़िया ने इन दोनों को भी आपस में लड़वा दिया। वो सब आपस में दोस्त थे शायद!"

बच्चे बहुत ही संवेदनशीलता के साथ अपनी बात रख रहे थे। उनकी बात को कोई गम्भीरता से सुन रहा है और महत्त्व दे रहा है, यह ख़ुशी मैं उनके चेहरे पर साफ़ देख पा रही थी।

बच्चे भावनात्मक रूप से पात्रों से जुड़ते हुए अपनी बात रख रहे थे, किन परिस्थितियों में क्या निर्णय लिया या क्या लिया जा सकता था, इसकी पड़ताल भी लगातार कर रहे थे। मैं साफ़ देख पा रही थी कि कहानी इंसानियत पर भरोसा मज़बूत कर रही थी।

कहानी से जुड़ते तार

तभी इस चर्चा को और आगे बढ़ाने का सोचा। एनसीईआरटी की पर्यावरण की

चित्र : 8

पाठ्यपुस्तक में 'खाना अपना-अपना' पाठ के साथ भी सीधे जोड़कर देख पा रही थी। यहाँ एक अच्छा मौक़ा था कक्षा के बाहर की चर्चा को कक्षा की पाठ्यपुस्तक से जोड़ने का। उसी पाठ को जोड़ते हुए मैंने कक्षा में एक और सवाल किया, "आप सब भूख की बात कर रहे हैं तो कोई बताएगा भूख क्या होती है?"

तभी बहुत-से बच्चों ने कई अलग-अलग जवाब दिए, मसलन–

पेट में जब तेज़ दर्द होता है तो वो ही भूख है।

पेट में गुड़-गुड़ होता है। भूख से जान निकल जाती है।

भूख लगती है तो हमको ग़ुस्सा आने लगता है।

हमको जब भूख लगती है तो हम ज़ोर-ज़ोर से मम्मी-मम्मी चिल्लाने लगते हैं।

मैंने बच्चों से जानना चाहा, "अगर आपको ज़ोर से भूख लगी हो, आपकी मनपसन्द चीज़ खाने के लिए आपके पास हो और अचानक वह किसी के साथ बाँटकर खाना पड़े तो क्या ऐसा कभी आपने किया है?"

चित्र : 9

बच्चों ने सोचते हुए जल्दी से हाथ ऊपर करते हुए कहा, "हाँ।"

आरोही ने कहा, "हाँ, हमें मिठाई बहुत पसन्द है। हमने जो बिल्ली पाली है उसको हमने दी थी।"

कंचन ने कहा, "हाँ, मध्याह्न भोजन में जब हमारी सहेली का पेट नहीं भरता तो हम उसको अपने हिस्से की रोटी दे देते हैं।"

अब बच्चों से दूसरा सवाल किया, "आप रोज़ खाने में क्या खाते हैं?" बोर्ड पर एक थाली बनाकर मैंने जानना चाहा, "आपकी थाली में रोज़ क्या-क्या होता है?"

अधिकांश बच्चों ने केवल एक ही जवाब दिया कि अरहर की दाल और रोटी होती है। दो बच्चों ने जवाब दिया कि दाल नहीं होने पर हम कांदा, रोटी भी खाते हैं।

मैंने जानना चाहा, "आप कोई सब्ज़ी नहीं खाते हैं क्या!"

कई बच्चों की तरफ़ से जवाब आया, "हमारे घर में पापा दाल ही लाते हैं।"

इस चर्चा को और आगे ले जाती, उससे पहले ही मध्याह्न भोजन की छुट्टी हो गई। थोड़ी देर बाद जब बच्चे लौटकर वापस आए तो सागर ने मुझसे सवाल किया, "मैडम, आपके घर पर तो गैस होगी न खाना पकाने के लिए"

मैं कुछ समझ पाती तब तक उसने मुझसे दूसरा सवाल भी कर डाला, "आपको तो लकड़ी के चूल्हे पर खाना भी नहीं पकाना होता होगा!"

मैंने थोड़ा सँभलते हुए कहा, "हाँ, मेरे घर तो गैस है।" मैंने उससे जानना चाहा, "आपके घर खाना कैसे पकता है।" उसने बताया, "अभी तक तो चूल्हे पर पक रहा था पर आज हमने भी गैस के लिए फार्म

भरा है। हमें भी जल्दी गैस मिल जाएगी।" मैंने आगे जोड़ते हुए कहा, "अरे वाह! फिर तो तुम भी गैस पर पका खाना खाओगे।"

शाला की घण्टी लगने के बाद बच्चे इस कहानी की किताब को छूकर देखना और पढ़ना चाहते थे। बच्चों ने एक गोले में कहानी पढ़ना शुरू कर दिया। मुझे लगा कि आज कहानी और मैंने, दोनों ने अपने-अपने काम को एक हद तक पूरा कर दिया है।

चित्र : 10

'बुढ़िया की रोटी' कहानी का समाजशास्त्र

आमतौर पर 'बुढ़िया की रोटी' कहानी के बारे में कहा जाता है कि बुढ़िया अपने हक़ को पाने के लिए कोशिश कर रही थी। लेकिन हक़ पाने की इस कोशिश में धमकाना, देख लेने की बात कहना, कमज़ोर पर दबाव बनाने के लिए लगातार किसी और ताक़तवर से मदद माँगना चलता रहता है। पॉवर का खेल है, ताक़त की नुमाइश है। और एक ताक़तवर कुत्ता, ताक़त दिखाने की जो शुरुआत करता है तो एक शृंखलाबद्ध तरीक़े से बिल्ली चूहे को, चूहा लकड़हारे को, लकड़हारा पेड़ को धमकाते चलते हैं और पेड़ कौवे से रोटी दिलवा देता है। पता नहीं, ताक़त की यह नुमाइश कितनी देर चली होगी, दस मिनट, आधा घण्टा या और ज़्यादा। कौवा तो भूखा था इसलिए उसने रोटी उठाई थी। लेकिन न खाते हुए अन्तिम दृश्य में रोटी को यथावत लौटा देता है, मानो कहानी की ज़रूरत के हिसाब से रोटी लिए ही पेड़ पर बैठा था। पाँचवीं या इससे बड़ी कक्षा के बच्चे इन बातों को समझ जाते हैं कि इस कहानी और व्यवहारिकता में काफ़ी फ़र्क़ हैं।

इस कहानी का एक पक्ष तो मैं देख पा रही थी कि रोटी पाने के लिए कैसे एक से बढ़कर एक ताक़तवर लोगों से बुढ़िया गुहार लगा रही थी।

हर कहानी के कई पहलू होते हैं। एक पक्ष है कि बुढ़िया अपने हक़ की लड़ाई लड़ रही है। रोटी की लड़ाई ही हक़ की लड़ाई है। अकसर हम लोग कहानी के इस पहलू को ही उभारते रहे हैं। इसलिए इस कहानी को बच्चों के सामने रखने का मेरा उद्देश्य था– मेरा ख़ुद का विचार बच्चों पर न थोपते हुए वे अपनी सोच व अनुभव के आधार पर चर्चा करें, और निष्कर्ष तक पहुँचें।

चित्र 1, 2, 4, 5, 6, 8, 9 और 10 पुस्तक *बुढ़िया की रोटी* चिल्ड्रन्स बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली प्रकाशन से साभार

नंदा शर्मा पिछले डेढ़ दशक से प्राथमिक शिक्षा और शिक्षक प्रशिक्षण कार्य से जुड़ी हैं। बच्चों के साथ काम करना पसन्द है। पूर्व में एकलव्य फ़ाउण्डेशन के साथ काम किया है। वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन के महेश्वर ब्लॉक में काम कर रही हैं।

सम्पर्क : nanda.muley@azimpremjifoundation.org

सोचने और सक्रिय होने का तरीक़ा है विज्ञान

सुरभि चावला

लेखिका इस लेख में तीन कक्षाओं के दर्ज अवलोकनों को साझा करती हैं। वे विज्ञान सिखाने के उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए इन कक्षाओं का विश्लेषण करती हैं और अपने अवलोकनों के आधार पर कहती हैं कि आज भी विज्ञान की अधिकांश कक्षाएँ पाठ्यपुस्तक-केन्द्रित, जानकारी-केन्द्रित और एकतरफ़ा संवाद वाली ही हैं। लेख के बाद वाले हिस्से में वे एक अच्छी विज्ञान की कक्षा के अवलोकन का विवरण देती हैं और बताती हैं कि उन्हें यह कक्षा क्यों फ़र्क़ लगी। इस कक्षा के विवरण के ज़रिए वे कक्षा में किस तरह की प्रक्रियाओं को जगह देने से विज्ञान शिक्षण बच्चों के लिए अधिक अर्थपूर्ण बन सकता है, इसका उदाहरण भी प्रस्तुत करती हैं। सं.

सभी बच्चे स्वभाव से जिज्ञासु और उत्सुकता का ख़ज़ाना होते हैं। छुटपन से ही वे दुनिया की पड़ताल शुरू कर देते हैं। सात-आठ माह के बच्चे के लिए हर आसपास की वस्तु उसको अपनी ओर आमंत्रित करती प्रतीत होती है। अपने आसपास की हर वस्तु में बच्चे इतना अनूठापन और आकर्षण पाते हैं कि वे उसे छूते हैं, उसका स्वाद चखना चाहते हैं, बुनावट को महसूस करना चाहते हैं, उसकी गन्ध की पहचान करना चाहते हैं, पटक कर उसकी आवाज़ देखना चाहते हैं, मज़बूती परखना चाहते हैं, आदि। यह सब वे वस्तु को हर तरफ़ से देखकर, छूकर, सूँघकर, चखकर, गिराकर, चाटकर, चबाकर, आदि कितनी ही क्रियाओं से करते हैं। वस्तुओं की यह छानबीन वे ख़ुद से ही कर सकते हैं और अलग-अलग चीज़ों का एक दूसरे पर प्रभाव भी जानना चाहते हैं, जिसके लिए वे वस्तुओं के साथ कुछ-न-कुछ करते रहते हैं। इन सब क्रियाओं में से वे अपने सीखने के लिए बहुत कुछ निकाल लेते हैं। बच्चों में महसूस करना, तुलना करना व सामान्यीकरण करना, अवलोकन के साथ-साथ स्वाभाविक रूप से होता रहता है। अगर कोई साथी मिल जाए तो उसे अपने इस कार्य में शामिल करना व अपने काम के बारे में बताना उन्हें बहुत अच्छा लगता है। बच्चों में जिज्ञासा और उत्सुकता के साथ-साथ इन सभी गुणों के पनपने की अपार सम्भावनाएँ होती हैं। यही विज्ञान के वे बुनियादी कौशल होते हैं जो वैज्ञानिक चेतना के भाव विकसित करते हैं। सभी बच्चों में सोचने और तर्क करने की नैसर्गिक क्षमता होती है और विद्यालयों से अपेक्षा है कि उनका गतिविधियों से परिपूर्ण सक्रिय परिवेश हो, जहाँ बच्चों को सोचने के अवसर मिलें और कार्य में उनके लिए कुछ चुनौती हो। औपचारिक विद्यालयी शिक्षा व्यवस्था की कुछ कक्षाएँ इन गुणधर्मों के पुष्पित-पल्लवित होने में क्या भूमिका अदा करती हैं, इसे कक्षा के कुछ उदाहरणों से समझेंगे।

कक्षा की चौखट के भीतर का विज्ञान

घर में बच्चों के सवाल हम सब सुनते हैं और अधिकतर नज़रअन्दाज़ कर देते हैं। ये सवाल किसी भी विषय पर हो सकते हैं व बच्चों की क्रिया अथवा अवलोकनों से उभरे होते हैं। यहाँ मैं कुछ उदाहरण रख रही हूँ और हम में से हरेक इसमें जोड़ सकता है। कुछ तो वो सवाल

हैं जो हमको / आपको बचपन में परेशान करते थे और जिनके जवाब अभी तक नहीं मिले, और कुछ वो जो आपने बच्चों को पूछते सुना होगा। कुछ उदाहरण यह हैं :

- दादा के मुच्छड़ में जूँ क्यों नहीं रेंगती?
- श्यामा गाय हरी घास खाती है पर दूध सफ़ेद क्यों देती है?
- मेरे पेट को कैसे पता चलता है कि मैंने अभी-अभी तरबूज़ खाया है और अब दूध नहीं पीना है।
- चींटी अपने लिए सेवक क्यों नहीं रख लेती?
- तुरई के बेल में फूल तो पीला था पर तुरई हरी क्यों हो गई?
- भूरी बकरी को श्यामा गैया की बहन बना सकते हैं क्या?
- आकाश में पानी कहाँ से आ जाता है?

इस तरह के सवाल सोचने वाले व अनेकों क्रियाओं का अवलोकन करने वाले, नई-नई क्रियाएँ (प्रयोग समान) सोचने व करने वाले और अपने अवलोकनों के आधार पर कुछ सामान्यीकरण कर अपनी समझ बनाते रहने वाले बच्चे जब स्कूल आते हैं तो उन्हें विज्ञान की कक्षा में क्या मिलता है? क्या उसमें उन्हें विज्ञान एवं पर्यावरण अध्ययन के प्रति समझ बनाने के आवश्यक बुनियादी कौशलों, जैसे– अवलोकन, विश्लेषण, अनुमान, तुलनात्मक अध्ययन, सामान्यीकरण, जिनका उल्लेख शुरू में किया है, आदि से रूबरू होने का मौक़ा मिलता है? विद्यालय में पाठ्यचर्या का क्रियान्वयन करते हुए यह किस रूप में उभरते हैं, यह जानने के लिए राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, नई दिल्ली के ज़िला दक्षिण पश्चिम के पाँच विद्यालयों में पर्यावरण अध्ययन व विज्ञान की तीसरी, चौथी और पाँचवीं कक्षाओं में सीखने-सिखाने की प्रक्रियाओं का अवलोकन किया गया। पहले दिन का अवलोकन इस प्रकार था :

- कक्षा 3
- बच्चों की उपस्थिति : 48

सभी बच्चे बैंचों पर एक दूसरे के साथ सटकर बैठे थे। उनके सामने बदरंगी मेज़ें थीं जिनपर खुली पाठ्यपुस्तकें रखी थीं। सभी बच्चे पुस्तक के पृष्ठ पर ही नज़रें गड़ाए हुए थे। उनके हाव-भाव बता रहे थे कि वे पुस्तक के पन्नों को देखने-पढ़ने के लिए बाध्य हैं। उन्हीं बच्चों की एक सहपाठी खड़ी थी। उसके हाथ में पुस्तक थी। पुस्तक का पन्ना देखकर वह ऊँची आवाज़ में उच्चारित कर रही थी, "अपनी अध्यापक के साथ पार्क में जाओ। घास या कोई छोटा-सा पौधा तोड़ो। इसे ध्यान से देखो। अपने साथियों से इसपर बात करो।" अध्यापिका इस विद्यार्थी को बैठने को कहती हैं और बीच की पंक्ति में बैठी विद्यार्थी, जो अपनी सहपाठी की कलाई पकड़ने का प्रयास कर रही थी, को आगे पढ़ने के लिए कहती हैं। वह विद्यार्थी आगे के हिस्से को पढ़ना शुरू करती है और इस तरह से 45 मिनट का सत्र पूरा हो जाता है। सत्र के बाद अध्यापिका बच्चों से कहती हैं कि पुस्तक में दिए गए चित्र को अपनी कॉपी में बनाओ, जिसका चित्र अच्छा होगा उसे 'वैरी गुड' मिलेगा। इसके बाद अध्यापिका अवलोकनकर्ता से पाठ्यपुस्तक के बारे में बात करती हैं, "देखिए, क्या बेकार-सा पाठ है। पौधे के भाग बताने के बारे में है ये, पर पूरे पाठ में कहीं ज़िक्र नहीं है पौधों के भाग का। बस यही लिखा है कि पौधा लो, उसे देखो, और देखकर लिखो क्या देखा? बच्चे पहले से क्या ज्ञान, समझ लेकर आए हैं कि पौधे के क्या-क्या भाग हैं? इस बारे में कोई बात नहीं हुई। बल्कि यह कहा गया कि किताब में तो पूरी-पूरी इन्फॉर्मेशन होनी चाहिए न कि पौधों में पहले जड़ है, फिर तना है, फिर शाखाएँ हैं। अपने-आप से कोई कैसे लिख लेगा? जानकारी तो किताब से ही मिलनी चाहिए न! ये तो मैं पिछले 12 साल से पढ़ा रही हूँ तो मुझे याद हैं पौधों के सारे भाग। असल में पहले जो किताबें चलती थीं, उनमें सारी नॉलेज होती थी। अब

चित्र : प्रशांत सोनी

वाली किताबों में तो बस 'देखो-करो', इसके अलावा कुछ है ही नहीं। अब ऐसी होंगी विज्ञान की पुस्तकें तो विज्ञान क्या ख़ाक सीखेंगे ये बच्चे?"

इस अवलोकन एवं अध्यापिका की बात से स्पष्ट होने लगा कि विज्ञान के बुनियादी हुनर जो सभी बच्चों के पास हैं और घरों में रोज़मर्रा की प्रक्रियाओं से गुज़रते हुए जिन्हें सहजता से विकसित किया जा रहा होता है, विद्यालय आकर यहाँ की पठन प्रक्रियाओं के ज़रिए इन बुनियादी हुनर के विकास के रास्ते अवरुद्ध हो जाते हैं।

इसी विद्यालय की दूसरी पाली की कक्षा 5 का अवलोकन किया गया।

- कुल नामांकित विद्यार्थी : 48
- कक्षा में उपस्थित विद्यार्थी : 32
- आज का पाठ 'मिट्टी एवं मिट्टी के प्रकार'।

अध्यापिका की मेज़ पर तीन कटोरियाँ रखी हैं जो ढँकी हुई हैं। अध्यापिका बच्चों को सम्बोधित करती हैं, "आज हम मिट्टी के प्रकार, विशेषताएँ और उपयोग पढ़ेंगे। मिट्टी तो आप सब जानते ही हैं। आपने खेल के मैदान में, सड़क पर देखी होगी और खेत में भी होती है। मिट्टी बहुत महत्त्वपूर्ण है। देखने में लगेगा कि सब जगह एक जैसी मिट्टी है पर नहीं, मिट्टी मुख्य रूप से तीन प्रकार की होती है। आइए, ये देखिए मिट्टी के प्रकार।" अध्यापिका अपनी बात रोक कर मेज़ पर रखी कटोरियों के ढक्कन उतारती हैं।

अब तक अनमने भाव से अध्यापिका की बात सुन रहे बच्चों के चेहरे पर कुछ चैतन्यता का भाव ज़ाहिर होता है। पीछे की पंक्तियों में बैठे बच्चे उचक कर देखने की कोशिश करते हैं। अध्यापिका उन्हें धैर्य रखने के लिए कहती हैं, "वहीं बैठो! वहीं बैठो! सभी को दिखाऊँगी।" अध्यापिका पहली कटोरी की मिट्टी छूती हैं और कहती हैं, "देखो, ये है बलुई मिट्टी... क्या कहते हैं इसे... बलुई मिट्टी, बोलो, सभी बच्चों बोलो।"

बच्चे समवेत स्वर में बोलते हैं, "बलुई मिट्टी।"

अध्यापिका कहती हैं कि अब अपनी कॉपी में बलुई मिट्टी की विशेषताएँ लिखो।

नम्बर एक : यह रेतीली होती है।

नम्बर दो : इससे बर्तन, खिलौने, आदि नहीं बनाए जा सकते।

इस तरह से अध्यापिका मिट्टी के तीनों प्रकारों की विशेषताएँ लिखवा देती हैं। यहाँ पर इस बात का उल्लेख करना ज़रूरी है कि कक्षा के कुछ ही विद्यार्थी मन लगाकर अध्यापिका द्वारा बोली जा रही बातों को लिख रहे थे। अधिकांश विद्यार्थी अनमने भाव से लिख रहे थे और बीच-बीच में कटोरियों में झाँकने का उपक्रम कर रहे थे। मिट्टी की विशेषताएँ बताने-लिखवाने तक सत्र समाप्त हो जाता है। अध्यापिका मॉनिटर को आदेश देती हैं कि ये कटोरियाँ स्टाफरूम में पहुँचा दे।

अब आपके सामने एक दूसरे विद्यालय की कक्षा 5 में पढ़ाए जाने का अवलोकन प्रस्तुत करती हूँ। यह सह-शिक्षा विद्यालय है। कक्षा में एक ओर लड़कियाँ बैठी हैं और दूसरी ओर लड़के। सभी के सामने पुस्तक खुली हुई है। कुछ विद्यार्थी पुस्तक पर नज़र गड़ाए हुए हैं तो कुछ कभी पुस्तक तो कभी अन्य सहपाठियों पर नज़र मार लेते हैं। अध्यापिका पुस्तक से देखकर पढ़ती हैं :

"भोजन हमारे जीवन की महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है। जीवित रहने के लिए भोजन आवश्यक है। भूख लगने पर हम अपनी पसन्द के अनुसार तरह-तरह की चीज़ें खाते हैं। तुमने शायद सुना होगा कि शरीर की वृद्धि के लिए प्रोटीन और ऊर्जा देने के लिए कार्बोहाइड्रेट और वसा की ज़रूरत होती है।..."

इस तरह से अध्यापिका पूरा पाठ पढ़ जाती हैं और कहती हैं कि कल इस अध्याय के प्रश्नोत्तर करेंगे।

अब तक मैंने तीन कक्षाओं में विज्ञान शिक्षण के अन्तर्गत चल रही प्रक्रियाओं को दर्ज किया है। बहुत-सी कक्षाएँ इसी तरह की एकरसता, निष्क्रियता और एकतरफ़ा संवाद की शिकार हैं। क्या आपको लगता है कि ये प्रक्रियाएँ किसी भी तरह से बच्चों में परिवेशीय सजगता का भाव पैदा करेंगी? आप सभी एकमत होकर कहेंगे कि इस तरह का अध्यापन बच्चों में विज्ञान जैसे रोचक विषय के प्रति अरुचि पैदा करेगा, वैज्ञानिक तत्परता के भाव को कुन्द करेगा और अपने परिवेश के प्रति मौजूद सजगता व उत्सुकता को भी समाप्त कर देगा।

चित्र : प्रशांत सोनी

तो यह तो तय है कि हमारी कक्षाओं की प्रकृति ऐसी नहीं होनी चाहिए पर कैसी होनी चाहिए, इसके लिए एक और उदाहरण प्रस्तुत है :

- कक्षा 5
- कुल नामांकित विद्यार्थी : 50
- उपस्थित विद्यार्थी : 46
- उप विषय : मिट्टी, मिट्टी के प्रकार एवं महत्त्व

सभी विद्यार्थियों से पूछा गया कि मिट्टी के बारे में वे जो कुछ भी जानते हैं, बताएँ।

काफ़ी कम विद्यार्थियों ने हाथ खड़े किए। उन्हें प्रोत्साहित करने वाली शैली में फिर पूछा गया कि उन्हें मिट्टी देखने, छूने व मिट्टी में खेलने के कुछ-न-कुछ अनुभव ज़रूर होंगे, जो भी अनुभव हैं, बताएँ।

इस बार कुछ और बच्चों में प्रतिक्रिया दिखाई दी, 'मैमजी हम बताएँ', 'मैमजी हम बताएँ', की होड़-सी लग गई।

बच्चों को कहा गया कि सभी के अनुभव सुने जाएँगे पर एक-एक करके, क्योंकि सभी एक साथ बोलेंगे तो किसी की भी बात समझ में नहीं आएगी।

बच्चों ने मिट्टी के बारे में अपने जिन अनुभवों को साझा किया, वे इस प्रकार हैं :

- मिट्टी बड़े काम की चीज़ होती है। ब्राउन भी होती है, काली भी और चिकनी भी होती है।

- मिट्टी में लोट नहीं लगाना चाहिए। इससे कपड़े गन्दे हो जाते हैं।
- मिट्टी भगवानजी होती है। मिट्टी की पूजा होती है। मिट्टी नहीं होगी तो अन्न कैसे उपजेगा।
- ढोर-डंगर मिट्टी में पलकर बड़े होते हैं। मिट्टी न होगी तो घास न होगी। घास न होगी तो डंगर मर जाएँगे। पेड़-पौधे भी न होंगे। फिर सब मर जाएँगे। मिट्टी तो रज होती है। मिट्टी का तिलक भी लगता है।
- अम्मा उपले बनाती है तो गोबर में थोड़ी-सी मिट्टी गेर देती है, भुस भी गेर देती है। अम्मा मिट्टी खोदकर ला रही थी तो पुलिस ने बेंतिया मारकर तसला ख़ाली करा दिया। फिर अम्मा सड़क किनारे की मिट्टी लाई, पर उस मिट्टी में अम्मा बोली कि बालू ज़्यादा है तो अम्मा ने वो वाली मिट्टी उपलों में नहीं डाली।
- मिट्टी में कभी-कभी महक आती है। कभी-कभी सड़ाँध भी आती है। दादी बोलती हैं कि उनके जमाने में मिट्टी को परनाम करके, तुलसी चौक पूजके ही कुछ होता था।
- हमारे घर तो मिट्टी से ही लिपाई होती है। पर अम्मा पहले बड़ी-सी छलनी में कंकर-पत्थर छान लेती हैं एकदम आटे जैसा राँधकर थोड़ी हल्दी डाल देती हैं। अम्मा कहती हैं कि इससे मिट्टी के कीड़े मर जाएँगे और घर भी पवित्र रहेगा।

अभी और भी बच्चे अपने-अपने विचार साझा करना चाह रहे थे, पर समय सारणी के अनुसार उन्हें शारीरिक शिक्षा हेतु मैदान में जाना था अतः मिट्टी पर हो रही चर्चा को यहीं रोक देना पड़ा।

कक्षा से बाहर जाते-जाते लगभग सभी बच्चे कहते गए, "मैमजी! कल भी पढ़ाई मत कराना। ऐसे आज की तरह बातें करना।"

बच्चों के इस वाक्य को सुनकर यह तो अहसास हो ही गया कि बच्चों को प्रोत्साहित करें तो वे चर्चा में अच्छी तरह भाग लेना जानते हैं। पर चर्चा को सीखने-सिखाने और शिक्षण का हिस्सा नहीं मानते हैं। शायद इसलिए कि चर्चाओं के माध्यम से बच्चों के अनुभवों को पुस्तकीय ज्ञान से जोड़ने की संस्कृति हमारी कक्षाओं का चरित्र नहीं है।

अगले दिन बच्चों की उमंग देखते ही बनती थी। कुछ बच्चे प्लास्टिक की थैलियों में मिट्टी के नमूने भी लाए थे और उन्हें दिखाने व उनके बारे में बताने के लिए उत्साहित थे।

सभी की बेचैनी भाँपते हुए निर्देश दिया कि अपनी-अपनी पोटली यहाँ मेज़ पर खोलकर रखें और छू-छू कर देखें कि कैसी मिट्टी है, फिर अपने-अपने अनुभव अपनी कॉपी में दर्ज करें। अवलोकन कर अपने अनुभव दर्ज करने का सम्भवतः यह उनका पहला अवसर था

चित्र : प्रशांत सोनी

क्योंकि मात्र 10–12 विद्यार्थी ऐसा कर पाए, शेष विद्यार्थियों ने मिट्टी को छुआ, सूँघा, मसला, मुट्ठी में लेकर एक निश्चित ऊँचाई से अपनी पोटली में रखी मिट्टी को फूँक मारने का प्रयास किया।

मिट्टी के बारे में बच्चे जिस तरह की बातें कर रहे थे, उससे यह साफ़-साफ़ परिलक्षित हो रहा था कि वे मिट्टी की विशेषताएँ, उसके गुणधर्म पहले से जानते हैं। यह अलग बात है कि यदि उनसे पाठ्यपुस्तक / स्कूली भाषा में प्रश्न पूछा जाए कि बच्चों, मिट्टी के गुणधर्म या विशेषताएँ बताओ, तो वे स्वयं से कुछ नहीं बताएँगे और इस बात की प्रतीक्षा करेंगे कि उन्हें पुस्तक से देखकर लिखने को कहा जाए या फिर श्यामपट्ट पर उत्तर लिखा जाए और वे उस उत्तर को अपनी कॉपी में उतारें, फिर परीक्षा हेतु याद करें।

चित्र : प्रशांत सोनी

एक बच्चे ने तो यहाँ तक भी बताया कि वह अपनी मिट्टी को आटे की तरह गूँथ सकता है, वहीं पास में खड़ी दूसरी विद्यार्थी ने कहा कि वह भी अपनी मिट्टी गूँथ सकती है, पर इससे अच्छा आटा नहीं गुँथेगा क्योंकि इसमें ढेर सारे कंकर मिले हुए हैं।

इतनी सब बातें बताने के बाद भी बच्चों को यही लगा कि आज भी कक्षा में पढ़ाई नहीं हुई है पर उन्हें मज़ा बहुत आया। जब उन्हें बताया गया कि आज तो मिट्टी के बारे में ढेर सारी जानकारी बताई गई तो उनका कहना था कि ये बातें तो उन्होंने ही बताई हैं, ये पढ़ाई नहीं है। इसमें कोई दो राय नहीं कि 'पढ़ाई' के प्रति जिस तरह के संस्कार उनके मन में गहरे पैठ चुके हैं, वे दो दिन के प्रयोग से मिटने वाले नहीं हैं।

बच्चों की शिक्षा से सरोकार रखने वालों को यह समझ बनानी ज़रूरी है कि औपचारिक विद्यालयी शिक्षा के सबसे पहले चरण पूर्व प्राथमिक और राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अनुसार बुनियादी चरण से लेकर महाविद्यालय तक विज्ञान को एक संज्ञा की बजाय एक क्रिया के रूप में देखना चाहिए। विज्ञान महज़ जानकारी का पुलिन्दा नहीं है बल्कि सोचने और सक्रिय होने का तरीक़ा है। पर्यावरण अध्ययन एवं विज्ञान की कक्षा में सबसे अधिक आवश्यक एवं अनिवार्य वैज्ञानिक प्रक्रिया है– 'अवलोकन' यानी बारीक़ी से जाँच-परख। इस प्रक्रिया के द्वारा ही हम अपने आसपास की दुनिया के बारे में जानकारी हासिल करते हैं।

विद्यार्थियों को चीज़ों के आकार, नाप, रंग, ख़ुरदरापन, चिकनापन आदि विशेषताओं के अवलोकन के ज़्यादा-से-ज़्यादा अवसर मिलने चाहिए। 'अवलोकन' के बाद वैज्ञानिक सोच प्रक्रिया में शामिल है 'तुलना करना'। जैसे-जैसे बच्चे चीज़ों की तुलना करना शुरू करें, उन्हें घटनाओं-परिघटनाओं और चीज़ों की तुलना करने के अवसर भी मिलने चाहिए। वे चीज़ों में मौजूद समानताओं और फ़र्क़ की खोजबीन करेंगे। तुलना करने का कौशल अवलोकन करने की क्षमता को भी पैना करेगा। अब बारी आती है 'वर्गीकरण' की। अवलोकन और तुलना करने के साथ ही 'वर्गीकरण' शुरू हो जाता है। बच्चों की

पैनी निगाह वस्तु विशेष के रंग, आकार, आकृति, सतह, आदि की पहचान करने में चूक नहीं करती। उदाहरण के तौर पर, यदि उन्हें तरह-तरह की पत्तियों का अवलोकन करने के अवसर दिए जाएँ तो वे स्वतः ही छोटे आकार की पत्तियों का अलग समूह बनाएँगे। सभी विषयों और क्षेत्रों के वैज्ञानिक अपने कार्य को नियोजित करने के लिए वर्गीकरण करते हैं। यानी 'वर्गीकरण करना' भी एक महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक प्रक्रिया है और विज्ञान की कक्षा में बच्चों को इस प्रक्रिया से जुड़ने के मौक़े भी सुलभ होने चाहिए।

अवलोकन, तुलना व वर्गीकरण करने के साथ-साथ एक और महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है 'मापना'। दूरी, वज़न, तापमान आदि को मापना वैज्ञानिक प्रक्रिया का ही हिस्सा है। शुरुआती दौर में यह अनुमान पर आधारित होगा और ग़ैर-मानक इकाइयों में बोला या लिखा जाएगा। जैसे-जैसे बच्चों को मापने के अवसर मिलेंगे वे अपने अनुमान को संख्यात्मक रूप देने लगेंगे और मानक इकाइयों में भी लिखने की प्रवृत्ति विकसित करेंगे। बच्चों द्वारा किसी भी चीज़ को मापने के तरीक़े भी बहुत निराले होते हैं, जैसे कि मेरी किताब, 4 मटर की फलियों के बराबर है। मेरी पानी की बोतल दो केलों के बराबर लम्बी है। मेरी रबर चार चींटियों के बराबर है। मापन की ये अमानक इकाइयाँ उनकी अवलोकन क्षमता के पैनेपन का उल्लेख करती हैं, इसलिए इस तरह के वर्णन के लिए उन्हें उत्साहित करते रहना चाहिए। वैज्ञानिक प्रक्रियाएँ निष्कर्ष निकालने व सम्प्रेषण के बिना अधूरी हैं। कई बार बच्चे अपने अवलोकनों के आधार पर निष्कर्ष निकालते हैं तो कई बार अनुमान व अटकलों के आधार पर। वे अपने पूर्व अनुभवों के आधार पर अनुमान लगाते हैं। जैसे कि कक्षा के बाहर से कुछ आवाज़ें आती हैं। इन आवाज़ों को सुनकर बच्चे तरह-तरह की अटकलें लगाते हैं कि ये किसकी आवाज़ है, बाहर क्या घटित हो रहा है या अब क्या घटित होने वाला है। इस तरह की अटकलें या अनुमान लगाने के मौक़े देना भी वैज्ञानिक तत्परता के भाव को विकसित करता है।

अन्ततः, यह कहना ज़रूरी है कि बच्चों को ज्ञान एक तयशुदा वस्तु के रूप में न थमाया जाए, न ही तथ्यों को रटने के लिए कहा जाए बल्कि उन्हें अपने अनुभवों को व्यक्त करने, अपनी तरह से आसपास के परिवेश का अवलोकन करने, खोजबीन करने के ज़्यादा-से-ज़्यादा अवसर मिलें। उनके खोजी, सक्रिय, चिन्तनशील और सृजनशील स्वभाव को समझते हुए कक्षा में ऐसा माहौल सृजित किया जाए जो प्राकृतिक व्यवहार के निकटतम हो।

ये सभी अनुशंसाएँ विज्ञान की कक्षाओं को बहुत ही रोचक बनाएँगी, ऐसा विश्वास है और ऐसा करना किसी भी दृष्टिकोण से मुश्किल व अव्यवहारिक नहीं है।

सुरभि चावला ग्रेट मिशन टीचर ट्रेनिंग इंस्टीट्यूट, द्वारका, नई दिल्ली में शिक्षक प्रशिक्षक हैं। आपने वार्विक यूनिवर्सिटी, यूके से इंटरनेशनल परफॉर्मेंस रिसर्च में और आंबेडकर विश्वविद्यालय, दिल्ली से ईसीसीई में स्नातकोत्तर किया है। आप नेशनल स्कूल ऑफ़ ड्रामा द्वारा आयोजित थिएटर इन एजुकेशन की कई कार्यशालाओं में फ़ेसिलिटेटर रही हैं। आपने कई संगठनों और शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थाओं में थिएटर से जुड़ी कार्यशालाएँ आयोजित की हैं और सत्र संचालित किए हैं।

सम्पर्क : chawla.surabhi08@gmail.com

कविता : भाषा सीखने का आनन्दमयी साधन

अनीता शर्मा

चित्र : 1

कविता भाषा सीखने का एक आनन्दमयी साधन है। कविता छन्दबद्ध होती है इस वजह से इसे लय व ताल में गाना सम्भव होता है और शायद इसी वजह से यह याद रखने में सहज हो जाती है। बच्चे जब मिलकर कक्षा में कविता गाते हैं तब भी काफ़ी ख़ुशनुमा माहौल बन जाता है। कई कविताओं में ध्वनियों का दोहराव होता है और तुकबन्दी के साथ नए शब्द आते हैं। इससे नए शब्द भी आसानी से शब्द भण्डार में जुड़ते रहते हैं व ध्वनियों से खेलने का मौक़ा भी मिलता है। मुझे लगता है शायद यही वजहें हैं कि कविता भाषा शिक्षण को सरल व रोचक बना देती है। और इसी वजह से कविता भाषा सीखने में अहम भूमिका अदा कर सकती है। शुरुआती कक्षाओं में कविता सुनने, सुनाने का महत्त्व और भी ज़्यादा होता है क्योंकि यह बच्चों और शिक्षक के बीच की दूरी को कम करने, बच्चे का कक्षा से जुड़ाव बनाने में भी काफ़ी मददगार हो सकती है, अगर बच्चों के स्तर उनकी दिलचस्पी और पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए कविताओं को चुना जाए और कक्षा में जगह दी जाए। इस लेख में मैंने अपनी पहली कक्षा में कविता 'पतंग' को कैसे किया और उस दौरान क्या-क्या हुआ, इसपर बात की है।

मुझे कविता सीखने का सबसे महत्त्वपूर्ण उद्देश्य कविता का रसास्वादन करना अर्थात कविता द्वारा आनन्द की अनुभूति करना लगता

है। इस पहले उद्देश्य को यदि सही मायने में हम प्राप्त कर सकें तो कई अन्य उद्देश्य स्वतः ही हासिल हो सकते हैं, या फिर उन उद्देश्यों को हासिल करना सरल हो सकता है। जैसे– यदि बच्चे कविताओं में मज़ा लेने लगें तो वे और कविताओं को भी पढ़ना चाहेंगे जिससे उनकी पढ़ने में रुचि बढ़ेगी। इसके अलावा, नई कविता पढ़ने व गाने में बच्चों को नए शब्दों की जानकारी तो होगी ही, साथ ही शब्दों के विभिन्न अर्थों को भी समझने की दिशा में वे आगे बढ़ेंगे। कविता में शब्दों को कई बार अलग ढंग से इस्तेमाल किया जाता है, जिससे शब्दों के अर्थ का दायरा भी व्यापक हो जाता है। शब्द भण्डार में यह वृद्धि सन्दर्भ ग्रहण की शक्ति भी विकसित करती है। यही नहीं, वे छोटी-छोटी तुकबन्दियाँ करना भी सीखते हैं। यह भी सम्भव है कि कविता को आगे बढ़ाने के लिए वे अपने आसपास की चीज़ों या घटनाओं को ध्यान से देखना भी सीखें। दूसरे शब्दों में, भाषा के विभिन्न पहलुओं को समझने में तो कविता मददगार होती ही है, लेकिन यह और भी कई चीज़ों को सीखने व समझने का माध्यम बन सकती है। यह अकसर कहते ही हैं कि कविता के माध्यम से बच्चों की सृजनात्मक व सौन्दर्यबोध शक्तियों का विकास होता है। इतना ही नहीं, मेरा मानना है कि कविता बच्चों का ध्यान केन्द्रित करने में भी सहायक होती है।

11. पतंग

सर-सर सर-सर उड़ी पतंग,
फर-फर फर-फर उड़ी पतंग।
इसको काटा, उसको काटा,
खूब लगाया सैर सपाटा।
अब लड़ने में जुटी पतंग,
अरे कट गई, लुटी पतंग।
सर-सर सर-सर उड़ी पतंग,
फर-फर फर-फर उड़ी पतंग।

चित्र : 2

कविता 'पतंग' पर किए गए काम के कुछ अनुभव

पहली कक्षा में कुल 32 बच्चे हैं। सभी ग्रामीण परिवेश से हैं। सभी के माता-पिता निम्न आर्थिक स्थिति वाले मज़दूर वर्ग के हैं। अधिकांश बच्चे पहली पीढ़ी से सीखने वाले हैं।

मैंने चुनी हुई कविता 'पतंग' पर काम करने के लिए योजना बनाई। इस कविता पर कक्षा में कैसे काम करूँगी, कौन-कौन सी गतिविधियाँ होंगी और उनपर काम कैसे होगा, इस बारे में विचार किया और योजना के मुख्य बिन्दुओं को नोट किया। साथ ही उन बिन्दुओं को भी लिखा जिनपर मैं बच्चों की समझ बनाना चाहती थी। मुख्य रूप से ये बिन्दु थे :
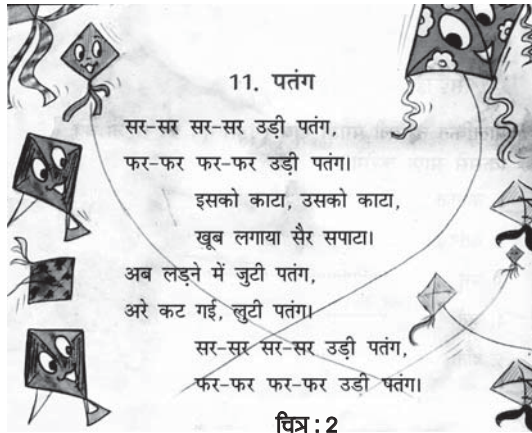
1. बच्चे कविता को बेहिचक गा पाएँ, गुनगुना पाएँ;
2. बच्चे कविता को समझ पाएँ, उसमें आए शब्दों को अर्थ दे पाएँ;
3. तुकान्त शब्दों को अलग निकाल पाएँ और वैसे ही नए शब्द बना पाएँ; और
4. कविता में आए कुछ शब्दों को पहचान पाएँ, धीरे-धीरे उनको पढ़ और लिख भी पाएँ।

फिर की जाने वाली गतिविधियों के बारे में सोचा। गतिविधियों की एक सूची बनाई, लेकिन सभी गतिविधियाँ सूची में दिए गए क्रम के अनुसार हुईं, ऐसा नहीं था। बच्चों के साथ जो काम होता जा रहा था, उसमें वो जो सीख रहे थे और जो मैं सिखाना चाहती थी, इसके बारे में सोचते हुए अगले दिन की गतिविधि, बनाई गई सूची में से चुन लेती थी। माने, मैंने इस सूची में थोड़ा लचीलापन रखा। आगे मेरे द्वारा किए गए काम का विवरण है।

पहला दिन

पहले दिन मैंने बच्चों से 'पतंग' शब्द पर ही बातचीत की। मैं चार्ट पर पतंग का चित्र बनाकर ले गई थी।

चार्ट पर बनाए पतंग के चित्र को बच्चों के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए उसपर बातचीत की। जैसे–

शिक्षिका : "यह किसका चित्र है?"

बच्चे : "यह पतंग का चित्र है।"

शिक्षिका : "इस पतंग में कौन–कौन से रंग हैं?"

बच्चे : "इसमें लाल, पीला और हरा रंग है।"

शिक्षिका : "क्या आपको पतंग उड़ाना अच्छा लगता है?"

बच्चे : "हाँ, हमें पतंग उड़ाना अच्छा लगता है।"

शिक्षिका : "क्या आपने कभी पतंग उड़ाई है?"

बच्चे : कुछ बच्चों ने 'हाँ' में उत्तर देते हुए कहा कि उन्होंने अपने बड़े भाई और चाचा के साथ पतंग उड़ाई है। कुछ ने कहा कि उन्होंने पतंग उड़ाने की कोशिश तो की पर उड़ा नहीं सके। कुछ बच्चों ने बताया कि उन्होंने केवल पतंग की डोरी चरखी में लपेटी है।

शिक्षिका : "क्या तुम बता सकते हो पतंग किन–किन चीज़ों से बनती है?"

कुछ बच्चों ने काग़ज़ कहा तो कुछ ने पन्नी। वहीं कुछ बच्चों ने जोड़ा कि उसमें लकड़ी भी लगी होती है।

शिक्षिका : "और यह उड़ती कैसे है?"

पतंग हवा से उड़ती है। एक रस्सी से उसे बाँधते और उड़ाते हैं। कुछ बच्चों का कहना था कि इसे डोरी की सहायता से उड़ाया जाता है। कभी–कभी पतंग लेकर दौड़ने से और फिर हवा में छोड़ देने से भी यह उड़ने लगती है। डोरी में माँझा भी होता है और सद्दी भी। इस डोरी से हाथ भी कट सकता है और डोरी चरखी में लिपटी होती है।

यह बातचीत करने के बाद पहले मैंने बच्चों को कविता की लाइन धीरे–धीरे पढ़कर सुनाई ताकि वे शब्दों पर ध्यान दे सकें और उनकी ध्वनियों को समझ सकें। उसके बाद हम सभी ने कविता को मज़े के साथ गाया। कविता गाते समय बच्चे पतंग उड़ाने का अभिनय भी कर रहे थे, मसलन, डोरी को छोड़ना, खींचना, चरखी में लपेटना और कटी हुई पतंग को लपककर पकड़ने जाना, चेहरे पर ख़ुशी और पतंग लूटने का भाव। हमने 3–4 बार कविता गाई और लगा कि यह बच्चों को कुछ हद तक याद हो गई है। इसके बाद सभी बच्चों को एक–एक सादा काग़ज़ देकर अपनी पसन्द की पतंग का चित्र बनाने व उसमें रंग भरने को कहा। पाठ्यपुस्तक *रिमझिम* में 'पतंग' पाठ में बने चित्र को भी दिखाया। बच्चों ने पतंग का चित्र बनाया व रंग भरे। तीन बच्चों को चित्र बनाने में थोड़ी कठिनाई हुई, तो उनकी सहायता सहपाठियों (रहनुमा, सोनम, अनुज) ने की। सभी बच्चों ने पतंग का चित्र बनाकर उसका नाम लिखा।

दूसरा दिन

दूसरे दिन कक्षा में मैंने धीरे–धीरे किताब से कविता को पढ़ा और बच्चों से कहा कि वे अपनी किताब में देखें और समझने की कोशिश करें कि मैं किस पंक्ति या शब्द पर हूँ। मैंने देखा कि बच्चे कुछ–कुछ जगह समझ पा रहे थे। इसके बाद मैंने कविता की आधी पंक्ति स्वयं गाई व आधी बच्चों ने गाकर पूरी की। आज कविता के शब्दों पर बात हुई। कौन–सा शब्द वे समझ गए और कौन–सा नहीं।

कविता में आए शब्दों मसलन, ख़ूब, सैर–सपाटा, जुटी–लुटी शब्दों पर बातचीत की। ख़ूब व सैर–सपाटा शब्दों को वाक्य में प्रयोग करने पर बच्चों ने सहज ही इसका अर्थ ग्रहण कर लिया। ये शब्द उनके घर में सामान्य बोलचाल की भाषा में भी प्रयोग किए जाते हैं। जुटी शब्द के अर्थ का बच्चे सटीक अनुमान नहीं लगा पाए, अतः इसका अर्थ शिक्षिका द्वारा उदाहरण देकर स्पष्ट किया गया। शब्द के अर्थ का अनुमान

बच्चों ने सही लगाया। (यह लुटी नहीं लूटी होगा)

तीसरा दिन

गतिविधि : यह विभिन्न आवाज़ों के बारे में थी। मसलन, बच्चों ने पतंग के उड़ने की आवाज़ सर-सर, फर-फर

घण्टी की आवाज़ : टन-टन, टन-टन

पानी गिरने की आवाज़ : टप-टप, टप-टप

पायल बजने की आवाज़ : छम-छम, छम-छम

हवा की आवाज़ : सर-सर, सर-सर

चूड़ियाँ बजने की आवाज़ : खन-खन, खन-खन

कपड़े उड़ने की आवाज़ : फर-फर, फर-फर आदि के बारे में बताया। जब बच्चे बता रहे थे तो मैं उन्हें ब्लैकबोर्ड पर लिखती जा रही थी। बातचीत पूरी होने के बाद मैंने उन्हें ब्लैकबोर्ड से इन शब्दों को लिखने के लिए कहा। टन-टन, टप-टप, आदि। बच्चे लिखने की कोशिश कर रहे थे और लिख भी पा रहे थे। जो बच्चे नहीं समझे, उनकी मैंने मदद की।

बच्चों को बारिश पड़ने की आवाज़ की गतिविधि करवाने के लिए उन्हें अपनी एक हथेली पर दूसरे हाथ की अंगुलियों से आवाज़ निकालने के लिए कहा। बच्चों ने पहले एक अंगुली, फिर दो, फिर तीन और फिर चार अंगुलियों से आवाज़ें निकाली।

चित्र : 3

इसी क्रम में फिर तीन अंगुलियों, दो और एक अंगुली से आवाज़ निकालते हुए गतिविधि बन्द कर दी। इसको करने से बच्चों को बारिश शुरू होने, धीरे-धीरे तेज़ होने, फिर कम होने और थमने की आवाज़ की अनुभूति हुई। वे आवाज़ के प्रति सजग थे। उन्हें बहुत आनन्द आया और बच्चों ने यह गतिविधि दो बार और दोहराई।

चौथा दिन

आज कविता की पहली दो पंक्तियों को लिखने का काम किया। मैंने बोर्ड पर कविता की पंक्तियों को लिखा और हर शब्द पर अंगुली रखते हुए उन्हें पढ़ा। उसके बाद बच्चों से लिखने को कहा। जब बच्चे लिख रहे थे, वे शब्दों को बोल भी पा रहे थे क्योंकि उन्हें कविता याद थी। हालाँकि वे शब्द बहुत सुन्दर बना रहे हों ऐसा नहीं था, लेकिन लिखने की कोशिश कर रहे थे और शब्दों को पहचानने की भी। मसलन, सर शब्द बच्चों ने पकड़ लिया था, फर और पतंग भी। चौथे दिन इतना ही काम हुआ लेकिन मुझे इस बात का सन्तोष था कि सभी बच्चों ने लिखने का काम किया और कुछ शब्दों को पहचानने का भी। इसके बाद तुकान्त शब्दों पर बात कर उनके साथ काम किया। कविता में आए तुकान्त शब्दों मसलन, सर-सर, फर-फर,

काटा, सपाटा, जुटी से मिलते-जुलते तुकान्त शब्द बच्चों से बताने को कहा गया। बच्चों द्वारा बहुत-से तुकान्त शब्द बताए गए, मसलन, डर-डर, घर-घर, आटा, टाटा।

पाँचवाँ दिन

पाँचवें दिन चार-चार बच्चों के समूह बनाए। बच्चों को समूह में कविता पढ़नी थी, जो शब्द समझ नहीं आए उसे एक दूसरे की मदद से समझना था। पूरे समूह को ही कोई शब्द समझ न आने की स्थिति में उसे रेखांकित करना था। सभी बच्चों ने कविता पढ़ने की कोशिश की। बहुत-से शब्द वे समझ गए थे, लेकिन उड़ी, जुटी, सपाटा, लड़ने जैसे शब्दों में उन्हें समस्या आई। यह समस्या हर समूह में आई। पर मूल बात यह थी कि शब्द पढ़ना और लिखना वे समझ रहे थे। असल में मेरा यह प्रयास भी नहीं था कि बच्चे कविता के सभी शब्दों को एक ही बार में समझ जाएँ। एक कविता से एक-दो दिन में ऐसा हो पाना सम्भव नहीं है। मेरी कोशिश सिर्फ़ इतनी थी कि बच्चे पढ़ने-लिखने की प्रक्रिया से जुड़ें और रोज़ उससे सम्बन्धित कुछ काम करें।

छठा दिन

कविता का समझ के साथ पठन अभ्यास : आज मैंने कुछ शब्दों व वर्णों को ब्लैकबोर्ड पर लिखा व उनसे पढ़ने के लिए कहा। कुछ बच्चे कविता में आए सरल शब्दों को ब्लैकबोर्ड पर लिखे जाने पर पढ़ने लगे और पाठ्यपुस्तक में भी पूरी कविता को अनुमान लगाकर पढ़ने लगे। कक्षा के 17 बच्चों ने पाठ्यपुस्तक से कविता पढ़ी व देखकर अपनी अभ्यास पुस्तिका में लिखी। 10 बच्चों ने कुछ शब्दों को (ख़ूब, सैर-सपाटा, लड़ने, जुटी-लुटी) अनुमान लगाकर पढ़ा। लेकिन यह साफ़ था कि कविता के बहुत से शब्द वे पढ़ पा रहे थे, और समझ के साथ पढ़ रहे थे। कक्षा के पाँच बच्चे कविता में आए बिना मात्रा वाले और सरल शब्दों को ही पढ़ पाए, शेष कविता को याद करने से याद हुए शब्दों और पढ़ते वक़्त उस याददाश्त का प्रयोग कर आगे आने वाले शब्द के बारे में अनुमान से ही पढ़ी गई।

मेरा अनुभव

बच्चों के साथ इस तरह कविता पर काम करने का यह मेरा पहला अनुभव था। कविता पर काम करते हुए मुझे महसूस हुआ कि अगर कविता बच्चों की रुचि व स्तर के अनुसार हो और उसमें गेयता हो तो वे जल्दी ही उसको गाना सीख जाते हैं। यह सीखना उनके उस कविता को पढ़ने और लिखने को सरल बनाता है, क्योंकि बच्चे अर्थ से जुड़ पाते हैं। मैंने पहले भी बच्चों के साथ कविताएँ की हैं लेकिन वह मुझे ही रूखी लगती थीं। मसलन, यह कविताएँ देखें :

चित्र : 4

नन्हे-नन्हे हमें न समझो हम भारत की शान हैं,
हमसे ही है धरती सारी, फैला यह आसमान है...

और

इब्नबतूता पहन के जूता निकल पड़े तूफ़ान में,
थोड़ी हवा नाक में घुस गई, घुस गई थोड़ी कान में...

इन दोनों में क्या कुछ फ़र्क़ है। कौन-सी कविता गाने-गुनगुनाने में ज़्यादा बेहतर महसूस होती है, कौन-सी कविता के शब्दों के अर्थ ज़ाहिर से हैं? फिर शुरुआती कक्षाओं में कविता पर काम शुरू करने का सबसे अहम और सहज

तरीक़ा है बच्चों के साथ मिलकर कविता गाना। न केवल बच्चों को बल्कि मुझे भी इसमें काफ़ी मज़ा आया। कभी सभी ने मिलकर गाया, कभी एक पंक्ति मैंने और अगली बच्चों ने। काम करते-करते बच्चों के अनुभव, प्रश्न और जवाब सुनते हुए भी कई गतिविधियाँ सूझ जाती हैं। उनको भी जगह देनी चाहिए।

आमतौर पर कविता को माहौल बनाने के लिए कक्षा में प्रयोग करते हैं, लेकिन यह उसका भरपूर अथवा उचित उपयोग नहीं है। मैंने अनुभव किया कि कविता सिर्फ़ कर लेने भर की ही गतिविधि नहीं है बल्कि इससे बच्चों को पढ़ना-लिखना सीखने हेतु पूरा सन्दर्भ मिलता है और अर्थ निर्माण भी हो पाता है। शुरुआती कक्षाओं में कविता बच्चों के मौखिक भाषा विकास के साथ-साथ पढ़ना-लिखना सिखाने में कारगर है और चले आ रहे तरीक़े से इतर एक और मज़बूत रास्ता सुझाती है।

चित्र 1 और 2 एनसीईआरटी द्वारा प्रकाशित पाठ्यपुस्तक *रिमझिम* भाग 1 से साभार और
चित्र 4 एकलव्य द्वारा प्रकाशित पुस्तक *बिट्टी और बिट्टू* से साभार

सन्दर्भ

शिक्षक सन्दर्शिका : कैसे पढ़ाएँ, *रिमझिम* भाग 2 (कविता की पढ़ाई)

रिमझिम पाठ्यपुस्तक, भाग 1, पाठ 11 पतंग (एनसीईआरटी)

ईएलईएम कार्यशाला में हुई चर्चा

हम भारत की शान हैं, वितान, मधुबन एजुकेशनल बुक्स, 109, दिल्ली

इब्नबतूता, एकलव्य चित्रकार्ड, एकलव्य, भोपाल

अनीता शर्मा राजकीय प्राथमिक विद्यालय शिवलालपुर अमरझंडा, काशीपुर, ऊधमसिंह नगर में विगत छह वर्ष से अध्यापन कार्य कर रही हैं। उन्हें बच्चों के साथ भाषा शिक्षण पर कार्य करना अच्छा लगता है।

सम्पर्क : anitapokhriyal2@gmail.com

बच्चे और विज्ञान मेला : एक अनुभव

अलका तिवारी

यह लेख स्कूल द्वारा आयोजित किए गए विज्ञान मेले के अनुभवों की झलकियाँ प्रस्तुत करता है। बच्चों द्वारा मेले के लिए की गई तैयारी, पुस्तकों को पढ़ना, अपने लिए प्रयोग और मॉडल चुनना, उनकी प्रदर्शनी के लिए रिहर्सल करना आदि सभी पहलुओं का विवरण इस लेख में है। साथ ही मेले में विभिन्न स्टॉल पर बच्चों द्वारा किए गए अवलोकन और पूछे गए प्रश्न व मेले के दौरान हुए अनुभवों को बच्चों द्वारा लिखना आदि के उदाहरण भी इस लेख में हैं। लेखिका कहती हैं कि विज्ञान शिक्षण के उद्देश्यों को हासिल करने में ऐसे आयोजन भी कुछ हद तक मददगार हो सकते हैं। सं.

विद्यालयों में विज्ञान सीखने-सिखाने की प्रक्रियाओं को जीवन्त बना पाना चर्चा का एक विषय रहा है। बच्चों के साथ काम करते हुए और साथियों के साथ संवाद द्वारा विज्ञान शिक्षण पर जो समझ बन पाई, उसके आधार पर मुझे लगता है कि विज्ञान सीखने का दायरा काफ़ी व्यापक है। बतौर शिक्षक मुझे विज्ञान सीखने के दो उद्देश्य महत्त्वपूर्ण लगते हैं : पहला, विषयवस्तुओं पर गहराई से समझ बनाना; और दूसरा, शिक्षण के ज़रिए बच्चों को वैज्ञानिक प्रक्रियाओं से गुज़रने के मौक़े देना। इसमें दूसरे बिन्दु पर ज़्यादा ग़ौर करने की ज़रूरत लगती है, क्योंकि पहला बहुत हद तक दूसरे बिन्दु में शामिल है। विषयवस्तु और अवधारणाओं पर गहरी समझ बनाने के लिए भी यह ज़रूरी है कि कक्षा प्रक्रियाएँ ऐसी हों जहाँ बच्चों को ठहरकर अवलोकन करने और आपस में अवलोकनों को साझा करते हुए विस्तार से चर्चा करने के अवसर मिलें, जहाँ बच्चे दूसरों व स्वयं के अवलोकनों पर प्रश्न खड़े करने के मौक़े और साहस जुटाना सीख पाएँ, सुने हुए विचारों पर सहमति-असहमति जताने की बजाय बच्चे उन्हें सहज होकर सुनना सीख पाएँ, उनपर विचार कर पाएँ, सवाल उठा पाएँ, उन्हें स्वीकारने या ख़ारिज करने से पहले सम्भावित तर्कों को ढूँढ़ने की पहल कर पाएँ। हालाँकि विज्ञान शिक्षक के रूप में यह काफ़ी चुनौतीपूर्ण ज़िम्मेदारी लगती है कि इन सभी प्रक्रियाओं को कैसे कक्षा में सम्भव बना पाएँ। साथ ही ख़ुद भी सक्रिय रहकर भागीदारी करने के लिए प्रेरित करने वाला एक सार्थक माहौल बन पाए, जिसमें बच्चे पहल करें और हर कोई बस इस प्रक्रिया का हिस्सा बनता चला जाए। मेरा मानना है कि इस तरह के अवसरों से बच्चों में विषयवस्तुओं को समझ पाने की जिज्ञासा मज़बूत होगी और वे स्वयं जाँच-पड़ताल करने की ओर बढ़ सकेंगे।

बच्चों को ऐसे सार्थक मौक़े उपलब्ध हो पाएँ, इसके लिए अज़ीम प्रेमजी स्कूल, जहाँ मैं पढ़ाती हूँ, में हर वर्ष विज्ञान दिवस पर विज्ञान मेले का आयोजन भी किया जाता रहा है। इस बार बच्चों ने समय लगाकर जिस तरह से विज्ञान मेले के आयोजन की प्रक्रिया में भागीदारी की और कार्य को व्यवस्थित स्वरूप देकर प्रस्तुत किया, यह काफ़ी उत्साह देने वाला रहा। काम की पूरी प्रक्रिया एवं बच्चों की अन्तर्क्रिया का स्वरूप मुझे कुछ इस तरह से प्रतिबिम्बित होता नज़र आता है।

बच्चों की तैयारी

बच्चों ने पुस्तकालय में मौजूद विज्ञान से सम्बन्धित पुस्तकों को टटोला और चयनित पुस्तकों को पढ़ा। इन पुस्तकों से प्रयोगात्मक क्रियाकलापों को चुनकर दो-दो के उपसमूह में इन्हें करने की ज़िम्मेदारी ली। चुनने के बाद उन्होंने इन क्रियाकलापों को ख़ुद करके देखा और अपनाए गए क्रियाकलाप की कार्य प्रक्रिया को अपने शब्दों में लिखने का प्रयास किया ताकि वह पाठक को आसान शब्दों में व ठीक ढंग से यह सम्प्रेषित कर पाएँ कि उस क्रियाकलाप में क्या हो रहा है और कैसे? इन प्रयोगात्मक क्रियाकलापों के अतिरिक्त बच्चों ने पुस्तकों की मदद से वैज्ञानिकों की जीवनी के अंशों को चुनते हुए कुछ पोस्टर तैयार किए। मेले के दिन सभी अपने काम को व्यवस्थित रूप से प्रदर्शित करने की तैयारी में थे। कुछ बच्चों द्वारा प्रयोगात्मक काम चुनने में उनके सामने दो तरह की चुनौतियाँ थीं –

- वे क्या करना चाहते हैं?
- क्या-क्या कर सकते हैं?

चीज़ों को ख़ुद चुनने की स्वतंत्रता कुछ ज़िम्मेदारियाँ भी लाती है। क्या करना है यह रुचि का सवाल है, पर क्या कर सकते हैं यह सामर्थ्य का। दिलचस्पी और सामर्थ्य में सामंजस्य बैठाकर काम करना चुनौतीपूर्ण है। चुने हुए काम को स्वतंत्र रूप से करना एक नई ज़िम्मेदारी, मसलन, उस काम को ठीक से क्रियान्वित करने की अपेक्षा देता है। बच्चों ने जिन क्रियाकलापों को चुना उनमें रुचि और क्षमता दोनों का ध्यान रखा। साथ ही वे यह भी तय कर पाए थे कि कहाँ उन्हें मदद की ज़रूरत होगी और वो मदद उन्हें किससे मिल सकती है। जैसा मैंने शुरुआत में ज़िक्र किया, मेला आयोजित करने के ऐसे अवसर एक ऐसी पहल हैं जो बच्चों के लिए इस तरह का वातावरण तैयार करते हैं जिसमें बच्चे ख़ुद संघर्ष कर और बार-बार ग़लतियाँ कर, कुछ नए विचार खोज पाते हैं, जिन्हें वे एक दूसरे से साझा करते हैं। यह दोनों पहलू

उन्हें काम करते रहने और नया सीखने का उत्साह देते हैं।

मेले का दिन

मेले के दिन बच्चों ने विभिन्न विषयवस्तुओं, जैसे– दाब, बल, प्रकाश, विद्युत, लैंस, चुम्बक, तैरना-डूबना, पत्तियों से विभिन्न जीवों की आकृतियाँ बनाना, पृथ्वी की आन्तरिक संरचना, ज्वालामुखी, आदि पर आधारित विज्ञान व भूगोल के 26 क्रियाकलापों को प्रयोग, मॉडल आदि के माध्यम से प्रस्तुत किया। इस प्रक्रिया के दौरान स्टॉल पर काम को संचालित करने वाले बच्चों

और अवलोकन के लिए आए बच्चों के बीच संवाद ने सीखने-सिखाने के माहौल को सहज बनाते हुए जीवन्तता प्रदान की।

संवाद का एक उदाहरण : एक स्टॉल पर चक्रवात दर्शाने वाले मॉडल पर हुई बातचीत :

प्रश्न : चक्रवात क्या है?

उत्तर : जब पानी तेज़ी से गोल-गोल घूमता है उसे चक्रवात कहते हैं।

प्रश्न : पानी गोल-गोल क्यों घूमता है?

उत्तर : जब पानी में तेज़ी से लहरें उठती हैं तब पानी में गोल भँवर बनता है। अगर भँवर में कोई गिर जाए और उसके बिलकुल बीच फँस जाए तो नीचे धँसता जाता है। इसे प्रयोग द्वारा समझते हैं। यहाँ दो पारदर्शी बोतलें हैं। नीचे वाली बोतल ख़ाली है और इसके ढक्कन में छेद बनाया है ताकि ऊपर रखी जाने वाली भरी हुई बोतल से पानी इस नीचे रखी बोतल में आ सके। मैंने पानी के साथ इस बोतल में कुछ थर्माकोल बॉल भी डाल दी हैं ताकि यह देखा जा सके कि भँवर में चीज़ें नीचे क्यों जाती हैं? अब मैं पानी से भरी हुई बोतल इस ढक्कन के ऊपर रखूँगी। और इस उपकरण को गोल-गोल घुमाऊँगी। आप ध्यान से देखें कि क्या होता है। बोतल के बीच में कोन जैसा कुछ बन रहा है जो ऊपर से चौड़ा और नीचे पूँछ की तरह होता जा रहा है। यही भँवर है, थर्माकोल बॉल इसमें नीचे धँसती जा रही हैं।

प्रश्न : ये नीचे क्यों धँस रही हैं?

उत्तर : ख़ाली जगह बन जाने की वजह से वायुदाब कम हो जाता है।

प्रश्न : ख़ाली जगह कैसे बनी है?

उत्तर : गोल-गोल लहरों के बनने की वजह से सारा पानी बोतल की दीवारों की तरफ़ तेज़ी से भागता है, इससे बीच में ख़ाली जगह बन जाती है।

प्रश्न : ख़ाली मतलब?

उत्तर : हवा भी नहीं होती! इस कारण यहाँ हवा का दाब कम होता है जिसकी वजह से भँवर बन जाता है। पर जैसे ही पानी घूमना बन्द होता है, धीरे-धीरे पानी इस जगह को भर देता है और ये भँवर ग़ायब हो जाता है।

स्टॉल पर किए गए बच्चों के अवलोकन और उनकी प्रतिक्रियाएँ

मेला देखने आए बच्चों ने प्रयोग की सामग्री व प्रक्रिया से सम्बन्धित सवाल किए। अलग-अलग स्टॉल से बच्चों के इस तरह के अवलोकन व प्रश्न थे :

- सुई काग़ज़ के साथ ही क्यों तैरती है, सीधे डालने पर तो डूब जाती है।
- क्या हम पृथ्वी के अन्दर जाएँ तो हमें तीन तरह की परतें दिखाई देंगी?
- पृथ्वी नीचे क्यों नहीं गिरती?
- कुण्डली क्यों घूमती है, अगर इसमें भी चुम्बक का गुण आ जाता है तो

ये दूसरी चुम्बक से चिपक क्यों नहीं जाती?

- रोशनी से एक से ज़्यादा रंग कैसे दिखते हैं?
- पम्प में पानी ऊपर क्यों आता है?

बच्चे हर उपकरण को टटोलकर देख रहे थे, जैसे– सौर मण्डल के मॉडल में देख रहे थे कि कौन-सा ग्रह किसके आगे और कौन-सा किसके पीछे है, सबसे आगे क्या है, पहिया घूमने से डिब्बी में पानी कैसे भरने लगता है, आदि।

देखते समय बच्चों के चेहरों पर ख़ुशी व उत्सुकता के मिले-जुले भाव थे। जब वे स्वयं मछली को नचाकर देख रहे थे तो उनके चेहरों पर खिलखिलाहट थी। गिलास रखने पर सिक्का ग़ायब कैसे हो जाता है, हवा निकलने पर गुब्बारा तेज़ी से भागता जाता है, ये देखकर वे ख़ुश हो रहे थे। छोटी उम्र वाले बच्चे पत्तियों से आकृतियाँ बनाने, गुब्बारे एवं चाँद-तारे, सूरज वाले मॉडल और पानी वाले प्रयोगों की ओर अधिक आकर्षित रहे।

प्रक्रियाओं को समझने की दृष्टि से बच्चे पर्याप्त व्यवहारिक अनुभव ले पाए। बातचीत के दौरान आए सवालों का सामना बच्चे संयम के साथ करते नज़र आए। संवाद का अवसर बच्चों में आत्मविश्वास भरने और मन में कुछ नए सवालों को जन्म देने व उनके समाधान खोजने की दिशा में बढ़ पाने का उत्साह बिखेरता हुआ नज़र आया। यह पूरी प्रक्रिया यह अनुभव करवाती है कि बच्चे स्वाभाविक रूप से बाल वैज्ञानिक हैं। वे अपने काम की प्रक्रिया को वैज्ञानिक शैली में बस कह ही नहीं पाते, अन्यथा समस्याओं पर रचनात्मक ढंग से काम करने एवं उनके हल ढूँढ़ पाने की प्रक्रिया में उन्हें बार-बार देखा जा सकता है। इसमें अलग-अलग तरह की जुगाड़, कई-कई बार प्रयास करके देखना, असफल होने पर फिर एक नई कोशिश के लिए तैयार हो जाना, आश्चर्यजनक धैर्य और उत्साह, सब सम्मिलित हैं। यह सब हमें भी एक नई ऊर्जा से भर देता है। मेले में बच्चों को अनुभव साझा करने के लिए भी कहा गया। उनमें से कुछ के अनुभव अंशों को आपके साथ साझा कर रही हूँ।

विज्ञान मेला, मेरा अनुभव

मेले के लिए बच्चे नए-नए उपकरण बनाते हैं जो बच्चों को अपनी तरफ़ आकृष्ट करते हैं। इन उपकरणों को देखकर बच्चों के अन्दर इनके बारे में जानने की इच्छा जागृत होती है। मैंने अपनी जगह रहकर अन्य बच्चों को अपने उपकरणों के बारे में भाव-भंगिमा के साथ बातचीत करते देखा। मैंने सौर मण्डल के बारे में जानकारी एकत्रित की और सबको विस्तार से बताया। हम सभी प्रसन्नचित्त होकर अपने काम को अच्छे से कर रहे थे। मैं बहुत ख़ुश था कि बच्चे मेरे आसपास थे और सवाल कर रहे थे। कुछ बच्चों की इच्छा थी कि वह भी उपकरण बनाएँ। इसके अलावा छोटे बच्चे भी शान्तिपूर्वक उपकरणों को देख रहे थे। उनको किसी की भी मदद की ज़रूरत नहीं पड़ी और उन्होंने कोई विघ्न भी नहीं डाला। वे सब दूर से उपकरणों को देख रहे थे। सबने जो भी प्रयोग किए उनका अपना प्रयोजन था। जैसे– मैंने सौर मण्डल पर काम किया। मेरा मक़सद था कि जो मैं बताऊँ, वह समझ में आ जाए और फिर देखने वाले बच्चे आगे बढ़ें। सभी बच्चे दस्तूर से चल रहे थे और बच्चों का कहना था कि अबकी बार आपने जो उपकरण तैयार किए हैं, वह बहुत ही मज़ेदार हैं। और बच्चे इस मेले में क़ायम रहे और जो प्रश्नों के उत्तर मुझे नहीं आते थे मैंने उनपर ग़ौर किया। – *रमेश, कक्षा 7*

मैं आपको अपने विज्ञान मेले का अनुभव बताऊँगी। सच तो यह है कि मुझे पहले यह कतई पता नहीं था कि कोई विज्ञान मेला भी मनाया जाता है या 28 फरवरी को विज्ञान मेला होता है। सभी को लगा कि हमें कुछ करने का मौक़ा था, तो सभी ने कहा कि हम सभी प्रयोग करेंगे। हमारा (नीतू और प्रीती) प्रयोग 'जादूगरी का गिलास करे चोरी' था। हम दोनों को लगा कि

हमारा प्रयोग इतना अच्छा नहीं है, क्योंकि वह काफ़ी सरल है। बारी-बारी से कक्षाएँ आ रही थीं। पहले-पहल हमारी स्टॉल पर कोई भी नहीं आया, बहुत देर हो गई। अचानक हमारी स्टॉल पर ललिता दीदी आती हैं और मैंने दीदी को बताया। इसके बाद धीरे-धीरे बच्चे आने लगे। हमारी पृथ्वी के बारे में प्रीती बता रही थी। अगर प्रीती को कुछ समझ नहीं आता तो मैं उसकी मदद कर देती। मुझे व प्रीती को लगा कि टीचर को यह अच्छा नहीं लगेगा। लेकिन वह सब टीचर को काफ़ी अच्छा लगा। छोटे बच्चों ने तो बहुत ही अच्छे सवाल किए जो मुझे पसन्द आए। फिर जब हमारी स्टॉल पर से जाने की बारी आई तो मैं नहीं जा पाई, क्योंकि मेरे स्टॉल में बहुत सारे बच्चे आ रहे थे। तो मुझे बहुत ही ज़्यादा ख़ुशी हो रही थी। *-नीतू, कक्षा 7*

यहाँ बच्चे मेले के दौरान अपने मनोभावों को साझा कर पा रहे हैं। साथ ही अपने काम को दूसरों के नज़रिए से पढ़ पाने की कोशिश दिखती है। बच्चों का अपने काम से लगाव व उसकी गुणवत्ता के प्रति अन्देशा झलकता है।

बच्चों के अनुभव की दुनिया में धीरे-धीरे इस विचार का दाख़िल होना ज़रूरी लगता है कि दुनिया की हर चीज़ के बारे में हमें ठीक-ठीक पता चल जाएगा, या फिर कोई हमारे सारे सवालों के जवाब बता पाएगा ऐसा वादा तो नहीं किया जा सकता, पर हमारे आसपास की कई सारी चीज़ों के बारे में तो हम कुछ छोटे-छोटे प्रयोग करके पता कर सकते हैं कि हमारा विश्वास कितना सही था! आसपास मिलने वाली चीज़ों से प्रयोग करके हम जान पाएँ कि क्या साबित हो रहा है, और अपने निष्कर्ष ख़ुद ढूँढ़ पाएँ, यही तो विज्ञान है। ऐसे तरीक़ों से जीवन में विज्ञान सीखते रहने को मज़ेदार बनाया जा सकता है। कुछ इसी सोच को बच्चों तक पहुँचाने के लिए रोचक प्रयोगों के माध्यम से ख़ुद करके सीखने की प्रक्रिया में ले जाने के लिए ऐसे अवसर मददगार हो सकते हैं जिनमें हमें अपने सवालों के जवाब के बारे में खोजबीन करने और सोचने की चुनौती मिले। हम सब ख़ुद कुछ करके देखते हुए आपस में बातचीत करें और एक दूसरे की ये समझने-समझाने में मदद करें कि क्या हो रहा है। साथ ही ये भी पता लगाने की कोशिश करें कि आख़िर ऐसा ही क्यों? हो सकता है उसी समय हम हर चीज़ के बारे में बिलकुल सही-सही पता न कर पाएँ, पर मिलकर सही जवाब ढूँढ़ने की दिशा में बातचीत हमारी थोड़ी मदद ज़रूर करेगी। शायद हमारी कोशिश कभी कामयाब हो जाए!

ये बाल मेला बच्चों के लिए कई मायनों में सीख पाने का माध्यम बना। विज्ञान सीखने-सिखाने की कई अर्थपूर्ण प्रक्रियाओं से बच्चे रूबरू हुए। इस तरह की प्रक्रियाओं से उम्मीद है कि हम सब विज्ञान के प्रति एक नई सोच और सीखने के इन मज़ेदार अनुभवों को बच्चों के जीवन का हिस्सा बना पाएँ।

अलका तिवारी ने शिक्षा में अपने काम की शुरुआत ज़िला बारां, राजस्थान में दिगंतर संस्था द्वारा चलाए जा रहे सहरिया समुदाय के बच्चों से जुड़े सन्दर्भशाला प्रोजेक्ट में की। फिर उन्होंने बोध शिक्षा समिति में विज्ञान शिक्षक के रूप में कार्य किया। वे 2012 से अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन में विज्ञान के टीचर एजुकेटर के रूप में जुड़ी हैं। अलका 2019 से अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन के टोंक स्कूल में विज्ञान और भाषा के शिक्षक के रूप में कार्य कर रही हैं। उन्हें शुरुआती कक्षाओं के बच्चों के साथ काम करना अच्छा लगता है।
सम्पर्क : alka.tiwari@azimpremjifoundation.org

कहानी और फ़िल्मों की जुगलबन्दी से मानवीय मूल्यों को सींचना

सन्दर्भ : 13 नवम्बर - विश्व दयालुता दिवस

मंजु श्रीमाली

लिखना अपेक्षाकृत जटिल कौशल है। स्वतंत्र और मौलिक लेखन तो और भी कठिन है। अव्वल तो इसके मौक़े ही कम होते हैं, फिर सोचने-विचारने और अपनी अभिव्यक्ति को रख पाने के लिए जो अनुकूलता और अवसर चाहिए वो स्कूलों में मिलता ही नहीं। परिणामतः बच्चे लिख पाने में बहुत सहज नहीं होते हैं। इसके अलावा, वर्तनी की अशुद्धियों पर शिक्षक की टिप्पणी और वाक्यविन्यास में कमी निकालने जैसी बातें बच्चों को लगातार हतोत्साहित करती हैं। मंजु श्रीमाली ने अपने इस आलेख में दयालुता विषय पर बच्चों के लेखन से जुड़ी हुई बारीक़ियों को रखने की कोशिश की है। साथ ही दयालुता विषय पर संवेदना और दृष्टि बनाने के लिए किए गए प्रयास पर भी टिपण्णी की है। सं.

पूरा हॉल भीड़ से खचाखच भरा था। हर कोई दीवारों पर लगे चार्ट, पोस्टर, कोलाज आदि देख रहा था। बच्चों में संवैधानिक-मानवीय मूल्यों का विकास हो, यह ध्येय लेकर हम 'विद्या भवन स्वराज एवं गांधी शान्ति केन्द्र' के तहत 13 नवम्बर, 2021 को विश्व दयालुता दिवस पर बच्चों के साथ कहानी लेखन, कविता लेखन, कोलाज, पोस्टर आदि गतिविधियाँ करवा रहे थे।

इस लेख में, मैंने इस कार्यक्रम की तैयारी के कुछ अनुभवों को रखा है।

जब बच्चों से कार्यक्रम में होने वाली विभिन्न गतिविधियों के लिए अपने नाम देने के लिए कहा गया तो ज़्यादातर बच्चों ने कोलाज एवं पोस्टर गतिविधि में नाम लिखवाया था। ये इस बात की तरफ़ सीधा इशारा था कि बच्चों के लिए कहानी एवं कविता लिखने वाली गतिविधि कठिन थी। मेरे लिए बच्चों को ख़ुद की कहानियाँ अथवा कविताएँ लिखने हेतु प्रेरित करना बहुत मुश्किल था। लगभग पन्द्रह दिनों तक मैं उनसे बात करती रही कि कैसे कहानी की शुरुआत होती है और उसे रोचक कैसे बनाया जा सकता है। इसके लिए कभी-कभी बच्चों को ख़ुद की लिखी कहानियाँ भी सुनाईं।

अन्ततः बच्चों ने कहानियाँ लिखीं। कुछ ने गूगल से कॉपी किया था तो उन बच्चों की कहानियाँ हूबहू एक-सी थीं, लेकिन इसमें उनकी कोई ग़लती नहीं थी। दरअसल, गूगल को कहाँ पता था कि एक ही गतिविधि के लिए अलग-अलग बच्चों द्वारा उसपर कहानियाँ खोजी जा रही हैं। उसने तो 'दयालुता पर कहानियाँ' सर्च करने पर हर बच्चे को वही रिजल्ट्स निकालकर दिए और बच्चों ने भी पहले ही रिजल्ट को कॉपी कर दिया। ख़ैर, उनके द्वारा नक़ल की गई एक जैसी कहानियों को भी मैंने प्रदर्शनी के लिए चुना था।

कुछ मूल कहानियाँ भी थीं। जो बच्चों ने अपने अनुभवों के आधार पर लिखी थीं। मसलन, कक्षा 7 के पूरण ने 'बिल्ली' पर एक कहानी लिखी थी। पूरण लिखता है, "मेरे घर की छत

पर रोज़ एक बिल्ली आती थी। मैं उसे दूध पिलाता था। एक दिन उस बिल्ली ने एक बच्चे को जन्म दिया और मर गई। मैं उस बच्चे को अपने घर ले आया और दूध पिलाने लगा। अब वह बच्चा बड़ा हो गया है और मैं उसका ख़ूब ध्यान रखता हूँ।"

कहानी बहुत छोटी थी, लेकिन सच्ची प्रतीत हो रही थी। जब पूरण से बात हुई तो उसने बताया कि ये बिलकुल सच्ची घटना थी।

चित्र : प्रशांत सोनी

अन्य कहानियों को भी मुझे पढ़ना था और एक के बाद एक बच्चों द्वारा लिखी कहानियाँ पढ़ते हुए जहाँ एक तरफ़ मुझे अजीब आनन्द की अनुभूति हो रही थी, वहीं छोटे-छोटे बच्चों की उन कहानियों में व्याप्त शब्दों एवं वाक्यों की अशुद्धियाँ पठन को और अधिक चुनौतीपूर्ण एवं रुचिकर बना रही थीं। इन्हें ठीक करना मैंने इसलिए उचित नहीं समझा, क्यूँकि ऐसा करना कहीं-न-कहीं उनके अभी-अभी उत्पन्न हुए लेखन के साहस को ख़त्म करना होता। मैं जानती थी कि समय के साथ वे ग़लत लिखे हुए शब्दों और वाक्यों को ख़ुद ही ठीक कर लेंगे। ये ग़लतियाँ उन्हें उनके जीवन से जोड़ेंगी, विचार देंगी और वास्तव में यही उन्हें सबसे ज़्यादा सिखाएँगी। एक इंसान और विशेषकर एक शिक्षक के रूप में हम हर बार यही ग़लती कर बैठते हैं, और बजाय भावों को समझने का प्रयास करके हमेशा शब्दों एवं वाक्यों की अशुद्धियों पर ग़ौर कर लेते हैं। लेकिन मैंने वह ग़लती नहीं की। मैंने प्रत्येक बच्चे की कहानी में बिखरे उसके भाव को सराहा। मुझे तसल्ली हुई कि इस प्रकार हम बच्चों के विचारों को जानने, उन्हें संवेदनशील बनाने और उद्वेलित करने का प्रयास कर रहे थे। एक और चीज़ जो वहाँ देखी जा सकती थी वो उम्र के अनुसार उनका लेखन था। छठी कक्षा के बच्चे के लेखन में नौवीं के बच्चे से कम परिपक्वता एवं शब्दों की कमी तो दिख रही थी। लेकिन अगर आप ये समझते हैं कि ऐसा होना लाज़िमी है तो आप छठी कक्षा के बच्चे के लेखन में भी भाव ढूँढ़ सकते हैं।

इसी वर्ष विद्यालय में दाख़िला लेने वाली कक्षा 11 की ख़ुशबू, ख़ुद को बहुत उत्साहित महसूस कर रही थी। उसने एक के बाद एक चार कहानियाँ लिखीं और मुझे पढ़वाईं। उसकी सबसे पहली कहानी बहुत उपदेशात्मक थी। मैंने उसे कहानी को उपदेश की बजाय घटनाओं से जोड़कर आगे बढ़ाने व थोड़ा और रोचक बनाने को कहा। उसने कहानी में सुधार किया। उसने लिंगभेद, धार्मिक सहिष्णुता एवं मानवता से जुड़ी अलग-अलग कहानियाँ लिखीं।

ख़ुशबू की पहली कहानी भी किसी ग़रीब की मदद करने पर थी, और ऐसे कई बच्चे थे जो समझते थे कि दया का मतलब बस दूसरों को कुछ देना या उनकी मदद करना होता है। अतः मुझे लगा कि बच्चों के साथ दया अथवा दयालुता के विस्तृत अर्थ पर बातचीत की जाए। यह बातचीत दयालुता के बारे में कैसे की जाए ताकि उनका हृदय सहज रूप से इसे आत्मसात

कर पाए और उनके लेखन में भी मौलिकता व गहराई आए।

एक तरीक़ा जो हमने बच्चों को दयालुता का अर्थ समझने हेतु अपनाया, वो था फ़िल्म स्क्रीनिंग का। हमने एक के बाद एक चार फ़िल्में क्रमशः *रोड टू रिफॉर्म* (समाज में क़ैदियों के पुनर्स्थापन को लेकर बनी फ़िल्म), *घर की मुर्ग़ी* (गृहिणियों के कार्य को सम्मान देने सम्बन्धी विषय पर आधारित), *लड्डू* (धार्मिक सहिष्णुता पर आधारित) एवं *पेंसिल बॉक्स* (ट्रांसजेंडर समुदाय को समाज में समानता का दर्जा देने का सन्देश देती फ़िल्म) दिखाईं। फ़िल्में देखने के बाद विद्यार्थियों एवं स्टाफ सदस्यों से फ़ीडबैक लिया गया।

काफ़ी देर तक हिचकिचाने के बाद कक्षा 10 के ऋषभ ने कहा, "*लड्डू* फ़िल्म में हमें ये बताया गया है कि हमें हिन्दू-मुसलमान के नाम पर नहीं लड़ना चाहिए। वास्तव में, हमारे बस धर्म अलग हैं, हैं तो हम सभी इंसान ही।" कक्षा 9 की उर्मिला कहती है, "हमें अपनी मम्मी के काम के महत्त्व को समझना चाहिए, वो हमारे लिए कितना काम करती हैं!" कक्षा 11 के निखिल ने कहा, "एक माँ हमारे लिए जो करती है, कोई नहीं कर सकता।" कक्षा 9 की नीतू ने भी सभी धर्मों का सम्मान करने की बात कही।

स्टाफ सदस्यों ने भी फ़िल्मों के चयन को सराहा एवं उन्हें पसन्द किया। एक स्टाफ सदस्य ने *घर की मुर्ग़ी* फ़िल्म से प्रेरणा लेते हुए कहा, "मैंने अपनी पत्नी के काम को कभी महत्त्व नहीं दिया। मुझे लगता था कि वास्तव में कमाता तो मैं ही हूँ, ये तो घर ही रहती हैं, लेकिन आज एहसास हुआ कि मैं कितना ग़लत था और आज से पहले ये मैंने कभी नहीं सोचा!" उन्होंने अपनी पत्नी को कहीं घुमाने ले जाने की बात भी कही। केवल एक बात जिसने मुझे परेशान किया वो यह थी कि ट्रांसजेंडर समुदाय के प्रति होने वाले भेदभाव की तरफ़ इशारा करती फ़िल्म *पेंसिल बॉक्स* पर कमेंट्स नहीं आए, जो दिखाता है कि इस मुद्दे पर हमारे आसपास कितनी असंवेदनशीलता व्याप्त है। अपने स्टाफ सदस्यों के साथ बैठे हुए मैंने ही इस मुद्दे को छेड़ा, तब एक ने कहा कि वाक़ई ट्रांसजेंडर समुदाय को एलियन की भाँति समझा जाता है, उनपर हँसा जाता है और उन्हें हमारी भाँति सामान्य जीवन जीते नहीं देखा जाता है। उन्होंने अपने पड़ोस में रहने वाले एक बच्चे के ट्रांसजेंडर होने की बात बताई जिसने सब तरफ़ पता चल जाने पर घर छोड़ दिया था।

जिस दिन प्रदर्शनी लगी, मैं ख़ुश थी कि सहानुभूति, प्रेम, सहयोग, समानता, अहिंसा

चित्र : प्रशांत सोनी

आदि को अपनाने व दयालु बनने का हमारा सन्देश बच्चों तक पहुँचा था। ये सन्देश बच्चों तक पहुँचना ज़रूरी था और इन मूल्यों का विकास उनमें हो यही तो अपेक्षा है हमारे संवैधानिक मूल्यों की। तो ख़ुश थी ही। मैंने देखा, बच्चे भी काफ़ी ख़ुश थे। जब वे अपनी कक्षा के बच्चों के साथ पंक्ति में घूमकर अपने द्वारा लिखी गई कहानियों को अपने दोस्तों

को बता रहे थे, तब उनकी आँखों की चमक देखने लायक़ थी। वे ख़ुद को औरों से कुछ साहसी एवं बेहतर समझ रहे थे। मुझे लगा कि यह भावना भविष्य में उन्हें इस तरह की गतिविधियों में भाग लेने एवं ख़ुद से लिखने के लिए सम्बल प्रदान करेगी।

मंजु श्रीमाली ने अँग्रेज़ी व इतिहास में स्नातकोत्तर किया है, उन्होंने बीएड की पढ़ाई भी की है। वर्तमान में विद्या भवन बुनियादी उच्च माध्यमिक विद्यालय, रामगिरि, उदयपुर में अँग्रेज़ी की अध्यापिका हैं। पढ़ाने के साथ-साथ विद्यालय में बच्चों के साथ सांस्कृतिक एवं साहित्यिक गतिविधियाँ आयोजित करती हैं। लेखन में विशेष रुचि है, और इसे अपने कार्य से जोड़ते हुए हिन्दी में कहानियाँ, नाटक एवं कविताएँ लिखकर विद्यालय के कार्यक्रमों में बच्चों के माध्यम से प्रस्तुत करती रहती हैं।

सम्पर्क : manjushri5633@gmail.com

बन्द–ए–महामारी और पढ़ना–लिखना सीखना

श्रीदेवी

महामारी के चलते हुए लम्बे समय के बन्द से बच्चों में लर्निंग लॉस देखा जा रहा है। प्रस्तुत आलेख में इसी समस्या और इसके समाधान की कक्षा-कक्ष रणनीतियों की चर्चा की गई है। लेखिका का मानना है कि बच्चे जितना जानते थे, उससे ज़्यादा भूल गए हैं, यह नुक़सान केवल 18 महीनों का नहीं है, यह 2 से 3 साल की क्षति के रूप में समझा जाना चाहिए। इसमें भी सभी बच्चों की क्षति में भी विविधता है। वह कहती हैं कि वर्तमान कक्षा के लिए निश्चित पाठ्यक्रम का दबाव, हर बार शिक्षण के लिए नए मानदण्ड और कम समय में बार-बार आकलन करवाने जैसी प्रक्रियाएँ भी शिक्षकों के अध्यापन कार्य का समय कम कर देती हैं। सं.

महामारी के दौरान जान बचाए रखना एक बड़ी चुनौती रही है। इस दौर ने हमारी व्यवस्थाओं की जो पोल खोली है, वह हम सबके सामने है। इस दौर में स्वास्थ्य के साथ-साथ जीविकोपार्जन और शिक्षा भी बहुत अधिक प्रभावित हुई है। जीविकोपार्जन पर लॉकडाउन (बन्द-ए-महामारी) का प्रभाव इस कदर है कि हाशिए पर चलने वाले निजी विद्यालय में पढ़ने वाले लगभग सभी बच्चों का पालकों द्वारा सरकारी विद्यालयों में प्रवेश कराया गया है, जिसके कारण सरकारी विद्यालयों में दर्ज संख्या बढ़ गई है और बच्चे भी अपनी पिछली कक्षाओं की दक्षताओं को या तो भूल गए हैं या उनमें बहुत पिछड़ गए हैं। नतीजतन शिक्षक भी समझ नहीं पा रहे हैं कि कक्षा में काम शुरू कहाँ से करें।

महामारी के दौर में लम्बे समय तक विद्यालय ही बन्द रहे हैं। हालात यह हैं कि कक्षा 6, 7 और 8 में पढ़ने वाले विद्यार्थी भी भाषा के बुनियादी कौशल, पढ़ना और लिखना व चिन्तन करके किसी विषयवस्तु पर बोलना, भी भूल गए हैं या उनमें कमज़ोर हो गए हैं। इसी कारण अब वे कक्षा में शिक्षक की बहुत कम बातों पर प्रतिक्रिया करते हैं।

शिक्षक भी इस ऊहापोह में हैं कि वे कक्षा 6, 7 और 8 में पढ़ने वाले बच्चों को क्या पढ़ाएँ। पाठ्यपुस्तक पढ़ने की स्थिति में बच्चे हैं नहीं। वर्ण, शब्द और मात्राओं को वे पढ़ना नहीं चाहते। यह पढ़ना-लिखना सिखाने का एकमात्र समाधान भी नहीं है। कक्षा की इस चुनौती पर शिक्षकों से कुछ चरणों में चर्चा की गई। मसलन, शुरुआत कैसे करें? योजना कैसे बनाएँ? बच्चों की चुनौतियों को कैसे देखें? या कार्ययोजना में बदलाव कैसे करें?

शिक्षकों से सबसे पहले यही चर्चा की गई कि 18 माह बाद जब स्कूल खुले हैं तो क्या बच्चे वो सारी बातें जानते-समझते हैं जब वे स्कूल नियमित आते थे या बन्द-ए-महामारी से पहले जितना जानते थे। इसपर शिक्षकों ने कहा कि जितना जानते थे केवल वही नहीं बल्कि उससे ज़्यादा भूल गए हैं और यह नुक़सान केवल 18 महीनों का नहीं है, इसे 2 से 3 साल की क्षति के रूप में समझा जाना चाहिए। इसमें भी सभी बच्चों की क्षति में भी एक विविधता

है। कक्षा में बच्चों की इन समस्याओं को हम हर पल देख रहे हैं, पर वर्तमान कक्षा के लिए निश्चित पाठ्यक्रम का दबाव, हर बार शिक्षण के लिए नए मानदण्ड और कम समय में बार-बार आकलन करवाने जैसी प्रक्रियाएँ भी शिक्षकों का कक्षा में अध्यापन का समय कम कर देती हैं।

इस पूरी प्रक्रिया पर बात करते हुए शिक्षकों ने बच्चों की कुछ दिक़्क़तों को बताया। जैसे—

चित्र : प्रशांत सोनी

पाठ को जब हम पढ़कर समझाते हैं तब तो वे उसे समझ जाते हैं, पर जब उनसे पढ़ने के लिए कहा जाता है या किसी प्रश्न का जवाब पूछते हैं या अपने शब्दों में लिखने के लिए कहते हैं तो उन्हें दिक़्क़त होती है। बच्चों को यह दिक़्क़त केवल भाषा विषय के दौरान होती है या विज्ञान और सामाजिक विज्ञान जैसे दूसरे विषय पढ़ते समय भी यह होता है, यह पूछने पर चर्चा में शामिल विज्ञान और सामाजिक विज्ञान के शिक्षकों ने बताया कि इन कक्षाओं में भी बच्चों की यही मुश्किलें हैं। उदाहरण देकर कोई अवधारणा बताने पर तो वे समझ जाते हैं पर जब उन्हें पढ़ने के लिए कहते हैं, वे बचने की कोशिश करते हैं।

कक्षा की तस्वीर

बच्चों की इन मुश्किलों को देखते हुए यह समझने की कोशिश की गई कि क्या कक्षा के सभी बच्चों की यही दिक़्क़त है या इसमें कोई विविधता भी है। इसपर शिक्षकों ने कहा कि 6 से 7 बच्चे ऐसे हैं जो थोड़ा-बहुत पढ़ पाते हैं। उसमें भी उन्होंने जो पढ़ा उसे समझाने या बताने के लिए कहें तो नहीं बता पाते हैं। कुल मिलाकर कक्षा में बच्चों के एक बड़े समूह को पढ़ने और लिखने में काफ़ी मुश्किल हो रही है और यह सभी विषयों में है।

चर्चा के इस अंश में यह तो समझ आया कि कक्षा के सभी बच्चों को पढ़ने में मुश्किलें हैं। यहाँ शिक्षक के सामने चुनौती है कि बच्चों को पढ़ना व लिखना तक नहीं आता और पहाड़ जैसा पाठ्यक्रम है जिसे उन्हें समझना है। इसमें गणित और विज्ञान जैसे विषयों में कुछ बुनियादी अवधारणाएँ भी हैं और यदि बच्चे उन्हें नहीं जानते तो इस कक्षा की विषयवस्तु को भी नहीं समझ पाएँगे।

इस चुनौती पर चर्चा करते हुए इस बात को केन्द्र में रखा कि;

- किसी पाठ को पढ़ाने का आधार और पढ़ाने के बाद बच्चे क्या सीख पाए, यह कैसे तय करते हैं?
- पाठ या अध्याय को पढ़ाने का आधार सीखने के प्रतिफल होते हैं और परिणाम भी सीखने के प्रतिफल पर निर्भर होता है।

विषय के अनुरूप उसके सीखने के प्रतिफल भी कौशल-केन्द्रित होते हैं। प्राथमिक रूप से

पढ़ना और लिखना सिखाने की ज़िम्मेदारी भाषा की है और वो भी शुरुआती कक्षाओं में। पूर्व माध्यमिक कक्षाओं में भाषा शिक्षण का उद्देश्य पढ़ना-लिखना सिखाने से बढ़कर साहित्य का अध्ययन और अध्यापन हो जाता है। ऐसे में जो बच्चे प्राथमिक कक्षाओं में पढ़ना-लिखना नहीं सीख पाए हैं वो कहीं दूर छूट जाते हैं।

चित्र : प्रशांत सोनी

माध्यमिक कक्षाओं में अन्य विषयों की समझ भी पढ़ने और लिखने के कौशल पर ही निर्भर करती है। इन कक्षाओं में केवल मौखिक समझ मात्र से बात नहीं बनती। ऐसे में क्या हम उस विषय के सीखने के प्रतिफल के साथ-साथ उसमें भाषा शिक्षण के एक बुनियादी प्रतिफल को जोड़ सकते हैं जिसका अध्यापन शिक्षक करा रहे हों। मसलन, सामाजिक विज्ञान और विज्ञान को पढ़ाते समय आप तथ्यों की विभिन्न स्रोतों से जाँच-परख करने की बात करते हैं। उसके साथ हम छात्रों से चर्चा में आ रहे सरल वाक्यों को लिखने की बात कर सकते हैं। शुरुआत में तो हमें शायद स्वयं ही लिखना शुरू करना होगा। छोटी-छोटी बातें बच्चों से भी लिखवा सकते है। 'लिखने में पढ़ना शामिल होता है', इस बात को समझते हुए उनके लिखे को तुरन्त ठीक करने का प्रयास न करें। उन्होंने जो लिखा उसके बग़ल में सही शब्द या वाक्य लिखकर उन्हें दिखा सकते हैं।

कुछ और नए तरीक़े

पढ़ने-लिखने के कौशल अधिक गहरे होते हैं तो हम थोड़ा-बहुत पढ़ने-लिखने पर काम करके कक्षा से नहीं जा सकते। हमें कक्षा में शिक्षण के कुछ और तरीक़े अपनाने होंगे। इसके लिए अपनी कक्षा के बच्चों को कुछ डिब्बों या श्रेणियों में देखना होगा। बच्चों के वर्तमान सीखने के स्तरों को शिक्षक साथियों ने ही समझाया।

- ऐसे बच्चे जो बहुत अच्छे से पढ़कर समझ सकते हैं।
- ऐसे बच्चे जो थोड़ी मेहनत करके पढ़ तो लेते हैं पर पढ़े हुए को समझ नहीं पाते।
- ऐसे बच्चे जो पढ़ने से डरते हैं, जी चुराते हैं और कक्षा में छुपने की कोशिश करते हैं।

अपने बच्चों को चिह्नित करें और अध्याय के शिक्षण से पहले सीखने के इन तीनों स्तरों के अनुरूप अपनी योजना बनाएँ। जैसे- यह प्रक्रिया कुछ विषयों के साथ सम्भव नहीं है। मसलन, गणित और अँग्रेज़ी में तो इसके लिए ज़्यादा परेशान न होते हुए इसे केवल सामाजिक अध्ययन और विज्ञान विषयों के अध्यापन में शामिल किया जाए तो बच्चों में भाषा पढ़ने और लिखने की दक्षता बढ़ने लगेगी।

स्तर	कक्षा में किया जाने वाला काम	
जो बहुत अच्छे से पढ़कर समझ सकते हैं।	उनसे पाठ को पढ़वाएँ।	पढ़ी हुई सामग्री का सारांश लिखने के लिए कहें।
जो थोड़ी मेहनत करके पढ़ तो लेते हैं पर पढ़े हुए को समझ नहीं पाते।	पढ़े हुए अंश को अपने शब्दों में कहने के लिए कहें।	पढ़े हुए अंश में आए चयनित शब्दों का उपयोग किन वाक्यों में हुआ है, उन्हें पाठ में खोजकर रेखांकित करने के लिए कहें।
जो पढ़ने से डरते हैं, जी चुराते हैं और कक्षा में छुपने की कोशिश करते हैं।	पढ़े हुए अंश को अपने शब्दों में कहने के लिए कहें।	चयनित शब्दों में किन ध्वनि संकेतों का उपयोग हुआ है? इस पाठ में इन ध्वनि संकेतों के और कौन–से शब्द आए हैं? ऐसे प्रश्नों के साथ थोड़ा काम किया जा सकता है।

इस प्रक्रिया को एक बार कक्षा में हर अध्याय के साथ शुरुआती अनुच्छेद के साथ कर सकते है, बाक़ी का पाठ विषय–केन्द्रित सीखने के प्रतिफलों को केन्द्र में रखकर कर सकते हैं। इससे बच्चों के अन्दर भी सीखने का आत्मविश्वास बढ़ेगा।

पढ़ने और लिखने को विविधता भरा बनाने की ज़रूरत है

केवल पढ़ना और लिखना ही क्यों, कोई भी कौशल नियमित तौर पर अलग–अलग तरीक़ों से करते रहने से आता ही है। पढ़ना सीखने के लिए पाठ्यपुस्तक के साथ–साथ हमें अपनी कक्षाओं में कुछ पोस्टर और समाचार–पत्र के विज्ञापनों पर बात करते हुए पढ़ने और लिखने की विषयवस्तु की विविधता को बढ़ाना होगा, जिससे बच्चों में उत्साह, रोचकता व जिज्ञासा बढ़ती है। बच्चों के जीवन के विभिन्न मुद्दों को केन्द्र में रखकर भी कक्षा में चर्चा कर सकते हैं। व्हॉट्सएप में उन्हें क्या देखना अच्छा लगता है, क्या वे किसी मैसेज को पढ़ पाते हैं, वे स्वयं मैसेज कैसे लिखते हैं, आदि पर चर्चा कर सकते हैं। पढ़ना और लिखना सीखने को उनकी ज़रूरत बनाएँ। उन्हें जितना भी पढ़ना–लिखना आता है उसी के आधार पर पोस्टर बनवाएँ। सीखने के प्रयास में जुटे बच्चों की छोटी–से–छोटी उपलब्धि उनसे साझा करें। साथ ही इस काम में लगे रहने के लिए हर छोटी सफलता पर हमें ख़ुद को भी शाबाशी देना चाहिए। किसी बच्चे को पढ़ना सिखाने के लिए आपने जो तरीक़ा अपनाया उसे अपने साथियों से साझा करना चाहिए। बहुत सारी व्यवस्थाओं के बीच काम करना बहुत आसान है लेकिन कम संसाधन, सीखने की कम इच्छाशक्ति और बिना किसी प्रेरणा के माहौल में बच्चों को पढ़ना–लिखना सिखाना ओलम्पिक में पदक जीतने के बराबर है।

श्रीदेवी ने पण्डित रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर से साहित्य और अर्थशास्त्र में स्नातकोत्तर की पढ़ाई की है। पिछले पन्द्रह वर्षों से प्राथमिक शिक्षा में भाषा शिक्षण के क्षेत्र में कार्य कर रही हैं। प्रमुख रूप से शिक्षक-शिक्षा, बाल साहित्य, और प्रारम्भिक साक्षरता में रुचि है। वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, रायपुर (छत्तीसगढ़) में कार्यरत हैं।

सम्पर्क : sreedevi@azimpremjifoundation.org

बच्चे और उनका आत्मविश्वास

फ़ैयाज़ अहमद

इस लेख में कुछ ऐसे अनुभवशील विवरण प्रस्तुत किए गए हैं जिनसे समझ बनती है कि यदि बच्चों को उनके रोज़मर्रा के जीवन से जुड़े चुनौतीपूर्ण शिक्षण कार्य दिए जाएँ और इन्हें हल करने के दौरान उनसे उत्साहवर्धक बातचीत की जाए तो बच्चे उस काम को करने में दिलचस्पी लेते हैं और उनका आत्मविश्वास बढ़ता है। सं.

मुझे बच्चों के साथ घुलना-मिलना और वक़्त बिताना अच्छा लगता है। लेकिन लॉकडाउन के कारण बच्चों के साथ मिलने-जुलने का सिलसिला रुक-सा गया था। लगभग 500 दिनों के बाद स्कूल खुले और इसी बीच मुझे भी एक स्कूल में बच्चों से मिलने-जुलने का मौक़ा मिला। आज लगातार बारिश हो रही थी। सड़कों पर पानी भरा था। आने-जाने में काफ़ी मुश्किल हो रही थी। ऐसे में यह सवाल बार-बार मन में आ रहा था कि क्या ऐसी बारिश में बच्चे स्कूल आएँगे? लेकिन मन में यह विश्वास भी था कि इतने दिनों बाद स्कूल खुले हैं, बच्चे ज़रूर आएँगे। इसी विश्वास और उत्साह के साथ हम चंडीगढ़ के बाहरी हिस्से के एक स्कूल में पहुँचे। वहाँ आठवीं और नौवीं की कक्षा चल रही थीं। हम कुछ देर के लिए वहीं रुक गए। हमारे आने की ख़बर स्कूल को हो गई थी। बच्चे हमें देखकर थोड़े घबराए हुए थे। उन्हें लग रहा था कि हम लोग वहाँ निरीक्षण के लिए आए हैं। कक्षा में गणित की एक कहानी पर गतिविधि चल रही थी। 8-10 वाक्यों की इस कहानी में ढेर सारे पात्रों के साथ कई संक्रियाएँ भी शामिल थीं। बच्चे व्यक्तिगत रूप से हल करने की कोशिश में लगे थे। बच्चों के चेहरों का रंग उड़ा हुआ था। गणित का दबाव उनके चेहरों पर साफ़ झलक रहा था। वे अनमने ढंग से गतिविधि कर रहे थे। इसे करने में उनकी रुचि बिलकुल भी नहीं थी। यह कहा जा सकता है कि गतिविधि करने में उनकी भागीदारी तो दिख रही थी लेकिन आत्मविश्वास की कमी भी साफ़ झलक रही थी।

कहानी का शीर्षक था 'मेला'। इसमें अलग-अलग उम्र के 6 दोस्त थे और वे एक साथ मेला देखने गए थे। सभी कुछ रुपए लेकर गए थे और मेले में ख़रीददारी भी की। इसपर आधारित कुछ सवाल पूछे गए थे, जैसे– सभी बच्चों की अलग-अलग उम्र बताइए, सभी दोस्तों के पास कुल कितने रुपए थे, मेले से लौटने के बाद कितने रुपए बचे, अमर के पास इमरान से कितने रुपए कम थे, आदि। एक सवाल बच्चों की उम्र पता लगाने पर आधारित था। दूसरा सवाल मेले में ख़र्च किए गए रुपयों पर आधारित था। फिर उनसे थोड़ा हटकर सवाल पूछा गया, जैसे– एक झूले की गोलाई 44 मीटर है। वह एक मिनट में 88 मीटर घूमता है। बताइए, उस झूले को 8 बार घूमने में कितने मिनट का समय लगेगा? सवाल देखकर बच्चे ख़ामोश हो गए। उन्हें कहा गया कि वे समूह बनाएँ और अपने-अपने समूह में बात करके उत्तर निकालें। काफ़ी समय हो गया लेकिन एक भी समूह उत्तर तक पहुँचने में सफल नहीं हो

पाया। क्या पूछा गया है, और क्या निकालना है, यह भी वे नहीं समझ पा रहे थे। ऐसा लगा मानो उनका आत्मविश्वास पूरी तरह से ध्वस्त हो गया हो। स्थिति को देखते हुए और आत्मविश्वास बढ़ाने के लिए हमने उन्हें एक नया टास्क दिया। इस टास्क को 4-4 बच्चों के समूह में हल करना था। बैठने की जगह तो ऐसी नहीं थी कि समूह बनाए जा सकें, फिर भी बच्चों ने ख़ुद को समूह में बदल लिया। टास्क था, 'मारुति (कक्षा के एक बच्चे का नाम) के पास अभी 257 सेब हैं लेकिन उसे 427 सेब चाहिए। उसे क्या करना होगा?' बच्चे सोचने लगे। कुछ बच्चों की आवाज़ें साफ़ सुनाई दे रही थीं कि जोड़ेंगे या माइनस करेंगे, नहीं-नहीं जोड़ेंगे और माइनस भी करेंगे। सभी बच्चे अपने-अपने समूह में अलग-अलग तर्क दे रहे थे। एक समूह के बच्चे सही उत्तर तक पहुँच ही गए। मैंने उनसे पूछा कि आपने यह उत्तर कैसे निकाला? जवाब देने में उस समूह के सभी बच्चे फँस गए। लेकिन एक बच्चा कामयाब हो गया और उसका उत्तर था– 170 सेब। हमने उससे कहा कि आपने उत्तर कैसे निकाला, बोर्ड पर आकर बताइए। वह आगे आया और समझाने की कोशिश करने लगा। उसने संक्रिया को हल कर लिया और 427 में से 257 घटाकर सही उत्तर 170 निकाल लिया। लेकिन जैसे ही उससे पूछा गया कि आपने घटाव क्यों किया? सवाल से तो ऐसा लग रहा था कि सेब की संख्या बढ़ेगी और जब कोई चीज़ बढ़ती है तो जोड़ते हैं घटाते नहीं। फिर आपने घटाया क्यों? इसका उत्तर उसके पास नहीं था। उत्तर कैसे निकाला यह बताने में वह असफल रहा। मौक़ा देखते हुए अब हमने एक नया टास्क दिया।

"आप बर्थडे पार्टी मनाते हैं?" मैंने पूछा।

सभी बच्चे एक साथ चिल्लाए, "हाँ!"

"आप अपने बर्थडे पर किसे बुलाते हैं?"

"दोस्तों को!"

"ऐसा मानिए, आपको अभी बर्थडे पार्टी करनी है, तो आप कितने दोस्तों को बुलाएँगे?"

"सोचना पड़ेगा!"

"आप अपने दोस्तों को क्या खिलाना चाहेंगे? यानी आप पार्टी के मेन्यू में क्या-क्या रखेंगे? हम सब मिलकर उसकी एक लिस्ट बनाते हैं, सभी चीज़ों की क़ीमत के साथ..."

"केक 180 रुपए का आएगा। अगर हम केक के 10 टुकड़े करेंगे तो हर टुकड़े की क़ीमत कितनी होगी?"

सभी समूह में शोर हो रहा था। बच्चे अन्दाज़ा लगाकर बताने लगे। उसी शोर में एक बच्चे ने कहा, "18 रुपए।"

"और क्या-क्या रखेंगे आप अपने मेन्यू में?"

"समोसा, क़ीमत 10 रुपए।"

"कोल्डड्रिंक, क़ीमत 20 रुपए।"

"बहुत बढ़िया। मान लीजिए कि आपके मम्मी-पापा ने पार्टी करने के लिए आपको 3000 रुपए दिए हैं। आप सभी अपने-अपने समूह में,

चित्र : शिवेन्द्र पांडिया

बच्चों के साथ मेन्यू बनाकर सबके साथ साझा कीजिए।" बच्चे बड़े उत्साह के साथ मेन्यू बनाने में जुट गए। यह टास्क उन्हें परिचित लगा। कुछ ही देर में एक साथ कई हाथ उठे। सभी को अपने मेन्यू साझा करने की जल्दी थी। पहले समूह ने बताया : 10 दोस्तों को बुलाएँगे और प्रत्येक को एक-एक टुकड़ा केक खिलाएँगे। इस तरह कुल 180 रुपए लगेंगे। फिर सभी को एक-एक समोसा, यानी कुल 100 रुपए। सभी को कोल्ड ड्रिंक मतलब 200 रुपए। यानी हम कुल 480 रुपए ख़र्च करेंगे।"

"और बाक़ी रुपयों का क्या करेंगे?" मैंने ज़ोर देते हुए पूछा।

"मम्मी-पापा को वापस कर देंगे!"

दूसरे समूह से एक लड़की ने अपनी प्लानिंग साझा की : 20 दोस्तों को बुलाएँगे और प्रत्येक को आधा टुकड़ा केक खिलाएँगे। इस तरह कुल 180 रुपए में ही काम चल जाएगा। फिर सभी को समोसा शेयर करके खाने के लिए कहेंगे। सब अपने दोस्त हैं इसलिए सब मान भी जाएँगे। आधा-आधा समोसा, यानी कुल 100 रुपए। सभी दोस्तों को कोल्ड ड्रिंक भी शेयर करके पीने के लिए कहेंगे। एक बोतल में 2 व्यक्ति। मतलब 200 रुपए। कुल ख़र्च होंगे– 480 रुपए।"

"अरे वाह! आपने पहले समूह के बराबर ही रुपए ख़र्च किए जबकि आप पहले समूह से दो गुने दोस्तों को बुलाएँगे।" मैंने इस समूह से भी वही सवाल दोहराया, "बाक़ी पैसे का क्या करेंगे?"

"बचे हुए रुपयों में से आधे मम्मी-पापा को देंगे और आधे हम रख लेंगे!" यह बात इस बच्ची ने इतने आत्मविश्वास के साथ कही
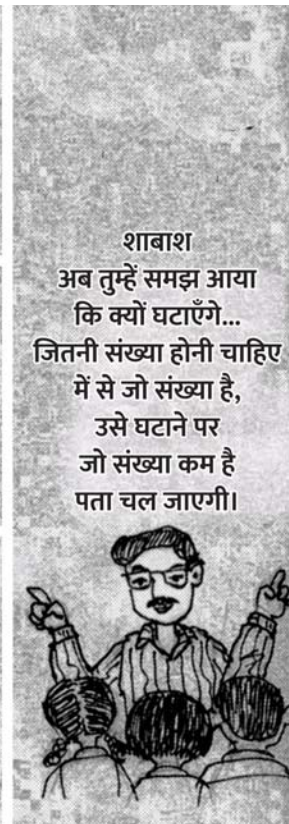
चित्र : शिवेन्द्र पांडिया

कि सभी ठहाके लगाकर हँस पड़े। टास्क पर बातचीत करने से बच्चे उसे आसानी से समझ पाए। उनका आत्मविश्वास दोगुना हो गया था। पढ़ने और हिसाब लगाने में उन्हें दिक़्क़त ज़रूर हो रही थी लेकिन बातचीत करके उन्होंने टास्क को समझ लिया था।

मैंने इससे जुड़ा एक और टास्क दे दिया : इस टास्क को करने के लिए आप सभी अपने मम्मी-पापा से पूछकर अपना मेन्यू बनाएँगे, शर्त सिर्फ़ इतनी है कि एक रुपया भी नहीं बचना चाहिए, पूरे 3000 रुपए ख़र्च करने हैं।" टास्क नया ज़रूर था लेकिन घबराहट का अंशमात्र भी उनके चेहरे पर नज़र नहीं आ रहा था। उनके चेहरों की चमक बता रही थी कि वे जाते ही न केवल मेन्यू बनाएँगे बल्कि घर वालों को भी इस पूरी प्रक्रिया में शामिल कर लेंगे।

तभी स्कूल की घण्टी बज गई। बच्चे अपनी जगह पर बैठे रहे। उन्हें घर जाने की बिलकुल जल्दी नहीं थी। यह बात तो साफ़ थी कि बच्चों से अगर ढेर सारी अर्थपूर्ण बातचीत की जाए और उनकी रोज़ाना की ज़िन्दगी से जोड़ते हुए टास्क लिए जाएँ तो वे अवधारणाओं को समझ पाते हैं, सीख पाते हैं और यह सीखना उनके आत्मविश्वास को भी बढ़ता है। इससे वे पढ़ने का मज़ा भी लेने लगते हैं और बड़े-बड़े सवालों को भी हल करने की चुनौतियों को बड़े उत्साह के साथ स्वीकारते हैं।

फ़ैयाज़ अहमद ने जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय से पीएचडी की है। इनकी साहित्य में रुचि है। पत्रिकाओं में कहानियाँ व लेख लिखते रहते हैं। तेरह वर्षों से ग़ैर-सरकारी संस्था 'प्रथम एजुकेशन फ़ाउण्डेशन' में कार्य कर रहे हैं।

सम्पर्क : faiyaz@pratham.org

मातृभाषा और गणित शिक्षण

सुधीर श्रीवास्तव

इस लेख में कक्षा तीन के बच्चों के साथ वृत्त की अवधारणा पर बातचीत के अनुभव साझा किए गए हैं। अनुभवों का यह विवरण -बच्चों के सीखने-सिखाने से सम्बन्धित कई बिन्दुओं को उभारता है।

सबसे पहले यह कि मातृभाषा में शिक्षण हो सकता है और काफ़ी सहजता से हो सकता है, यह भी कि मातृभाषा में कक्षा में बातचीत बच्चों को तरह-तरह से सोचने के मौक़े उपलब्ध कराती है, जैसे जो पूछा जा रहा है उसके जवाब देना, लेकिन साथ ही उन अनुभवों के बारे में सोचना जो अभी सामने नहीं हैं, उन अनुभवों को जोड़ पाना और उसमें कुछ निष्कर्ष निकाल पाना। कक्षा का विवरण पढ़ने पर यह बिन्दु सहज रूप से खुलते जाते हैं। ये भी समझ आता है कि किसी गणितीय अवधारणा को समझने में बच्चों के पूर्व ज्ञान का क्या अर्थ है, बच्चों से किस प्रकार के प्रश्न किए जा सकते हैं ताकि वे अपनी समझ को खँगाल सकें, किसी अवधारणा पर कैसे आगे बढ़ा जा सकता है आदि। सं.

छत्तीसगढ़ राज्य में नई पाठ्यपुस्तकों के निर्माण के समय की यह बात है। पाठ्यपुस्तक लेखन का एक अहम हिस्सा यह था कि लेखन कार्य से जुड़े सदस्य निर्धारित समयान्तराल में उन शालाओं में जाया करते थे जहाँ बनाई गई पुस्तकों को लेकर सीखने-सिखाने का काम हो रहा था। उन शालाओं में शिक्षकों को बच्चों के साथ काम करते हुए देखना, उनसे उनके अनुभव सुनना, बच्चों के साथ अध्यायों पर बातचीत, उनकी प्रतिक्रियाएँ लेना, आदि काम होता था।

उस दिन मैं सुबह आठ बजे ही उस शाला में पहुँच गया था जो विकासखण्ड मुख्यालय से लगभग चालीस किलोमीटर दूर जंगलों के बीच बसे एक गाँव के बाहर स्थित थी। शाला में एक शिक्षिका और तीन शिक्षक कार्यरत थे / दिव्या, गोकुल, विराज और सुनील पैंकरा।

शाला भवन काफ़ी पुराना था। सुनील ने बताया कि इसी भवन में उनके पिताजी ने भी पढ़ाई की थी। इतने पुराने स्ट्रक्चर को लोगों ने जो हिफ़ाज़त दी थी वह उनके लगाव को बयाँ कर रही थी। क़रीब पाँच फीट ऊँचे चबूतरे पर बना एक बड़ा और बीस फीट ऊँचा हाल, उसके चारों ओर बने अपेक्षाकृत कुछ कम ऊँचाई के खुले बरामदे। शिक्षिका उत्तर की तरफ़ के बरामदे में कक्षा एक और दो के बच्चों के साथ भाषा पर काम कर रही थीं। मैं हॉल में बने स्टाफ रूम में ही तीनों शिक्षकों के साथ बैठा था।

हमने उस दिन गणित सीखने-सिखाने में गणित की पाठ्यपुस्तकें मदद करती हैं या नहीं, इसपर बातचीत की। बातचीत में थोड़ी देर बाद शिक्षिका भी सम्मिलित हो गई थीं।

उन्होंने जो बातें कहीं, उसका सारांश था कि गणित की नई किताबें पहले से थोड़ी अलग

हैं। चित्र बहुत हैं जो समझने में मदद करते हैं। पाठ भाषा के पाठों की तरह बने हैं जिनमें गणित को समझाने की कोशिश की है। कई पाठ ऐसे हैं जो बिलकुल नए हैं, ऐसे पाठ गणित में पहले नहीं हुआ करते थे। प्रश्नावलियाँ और प्रश्न भी कम हैं। उदाहरण काफ़ी हैं और नए प्रश्न बनाने की बातें लिखी हैं। बच्चों के करने के लिए कई गतिविधियाँ सुझाई गई हैं।

जब उनसे पूछा गया कि क्या इसके अनुसार काम करने में कोई कठिनाई है, उनके जवाब थोड़े निराश करने वाले थे। उनका कहना था, "पहले पढ़ाना आसान था। दो-चार सवाल बोर्ड पर समझाते थे और बच्चे वैसे ही सवाल हल करने की कोशिश करते थे। जो बच्चे पढ़ने में ठीक होते थे वे नए सवाल हल कर लेते थे, बाक़ी बच्चे उनसे देखकर बना लेते थे। अब गतिविधियाँ हैं। एक तो इसके अनुसार काम करने में समय बहुत लगता है, दूसरे हमें इसकी आदत नहीं है। गतिविधियों के लिए कई तरह के सामान जुटाने की ज़रूरत पड़ती है, वह सब कहाँ से लाएँ, यह भी एक समस्या है। जो प्रशिक्षण हुए उनमें कहा गया कि बच्चे बहुत-सी बातें पहले से जानते हैं उनका पता करो और उनके अनुभवों को शामिल करते हुए पाठ को आगे बढ़ाओ। यह तो सोचने वाली बात है कि बच्चों को सब पहले ही पता होता तो उन्हें सिखाने की ज़रूरत ही क्यों पड़ती! पहले किताबों में पर्याप्त प्रश्न होते थे, इससे बच्चों का अच्छा अभ्यास हो जाता था। धीरे-धीरे वे नियमों को सीख जाते थे। जो नए प्रकार के पाठ जुड़े हैं उनमें गणित कहाँ है यही समझ में नहीं आता, जैसे– पैटर्न बनाओ, छोटे-बड़े, हल्के-भारी की तुलना करो, और भी ऐसे कितने पाठ हैं।"

चित्र : हीरा धुर्वे

उनकी बातें सुनते हुए मुझे यह लग रहा था, यह एक स्वाभाविक प्रतिक्रिया है। हमारी पीढ़ी के लोगों ने जैसी कक्षाओं में पढ़ाई की है वहाँ गणित की कक्षाओं में आपसी बातचीत और मिलकर समझ बनाने के मौक़े नहीं के बराबर होते थे। प्राथमिक कक्षाओं में ही नहीं, बल्कि आगे के सभी स्तरों में गणित पढ़ाने का प्रायः एक ही ढंग हुआ करता था। अध्यापक बोर्ड पर कुछ सवाल हल कर देते थे और बच्चे उनकी कॉपी करते थे। बचे हुए सवालों को घर से बनाकर लाने के निर्देश का पालन करना पहाड़ पर चढ़ने जैसा हुआ करता था।

मैंने पूछा, "और कैसी-कैसी मुश्किलें आती हैं? कृपया यह भी बताएँ।" अब जो उनके जवाब थे, वे बच्चों और उनके अभिभावकों से जुड़े थे। उनके अनुसार, घरों में पढ़ने-लिखने का माहौल नहीं है। जो भी पढ़ाई होती है स्कूल समय में ही होती है। बच्चे ठीक से अपनी पुस्तकें नहीं पढ़ पाते। गणित में तो उनकी स्थिति और बुरी है।

सुनील ने कहा, "आप बताइए सर, क्या करें कि बच्चे अच्छे-से सीखने लगें। वे सीखेंगे, बताएँगे तो इससे हम सभी को अच्छा लगेगा। पर कोई रास्ता हम ढूँढ़ नहीं पा रहे हैं।"

मैंने कहा, "यह सबकुछ उतना मुश्किल भी नहीं है जितना दिखाई पड़ता है। पहले यह समझने की ज़रूरत है कि जिन बातों को अपनाने की सिफ़ारिश की जाती है उसके पीछे क्या विचार निहित है। फिर उन्हें अपनी परिस्थितियों और सन्दर्भों में आज़माकर देखने की आवश्यकता होती है। यदि परिणाम बेहतर आते हैं तो इसका मतलब है कि इसपर सोचे

जाने की ज़रूरत है। उदाहरण के लिए, एक बात उठाते हैं। पाठ्यपुस्तकों की रचना करते समय इस विश्वास को जगह दी गई कि बच्चे जब स्कूल आते हैं तो उनके पास उनकी एक सशक्त भाषा होती है जिसकी मदद से वे अपने विचार और अनुभव रख सकते हैं। दूसरी बात, वे स्कूल और किताबों के बाहर की दुनिया में भी बहुत-सी बातें देखते-सुनते हैं। ये बातें उनके दिमाग़ में निश्चित रूप से अपनी जगह बनाती हैं। वे उनपर सोचते हैं, आपस में बातें भी करते हैं। उनके ऐसे अनुभवों का संसार बहुत विस्तृत होता है। अब यदि एक शिक्षक के रूप में कुछ नए विचार हम उनके सामने रखना चाहते हैं तो ऐसा करने के एक से ज़्यादा विकल्प हमारे सामने होते हैं।
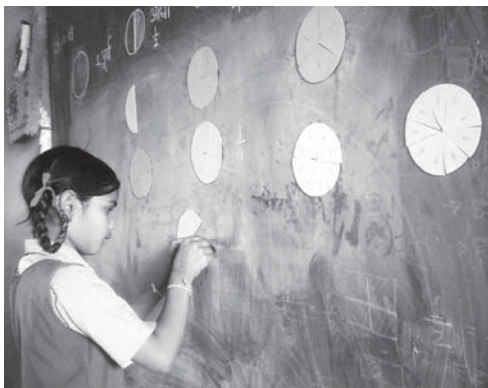
चित्र : संगीता पिपले

सबसे आसान होता है कि सीधे-सपाट तरीक़े से अपनी बात उनसे कह दें। दूसरा तरीक़ा हो सकता है कि हम उनके भीतर यह टटोलने की कोशिश करें कि इस नए विचार से जुड़े क्या-क्या अनुभव उनके पास हैं, उनपर बातचीत करते हुए उन्हें इसके आगे के नए विचारों से जोड़ते चले जाएँ। इनसे आगे एक तरीक़ा और भी सम्भव है कि उनके आगे प्रश्न या शंकाएँ छोड़ दी जाएँ। उन्हें ढूँढ़ने दिया जाए अपने-अपने उत्तरों को। इस प्रक्रिया में उन्हें आपस में बातें करने, अपने तरीक़े और संसाधन चुनने और उपयोग करने की स्वतंत्रता देनी होगी। इनके अलावा और भी तरीक़े हो सकते हैं। क्या आप लोगों को इन तीनों तरीक़ों में कोई फ़र्क़ नज़र आता है?"

कुछ देर बाद दिव्या ने कहा, "मुझे लगता है मैं पहले तरीक़े का उपयोग करती हूँ। कहानी सुनाना हो या कविता का पाठ पढ़ाना या गिनती सिखाना... हर काम में मैं ही बोलती रहती हूँ। बच्चे बस मुझे देखते-सुनते रहते हैं। अब सोच रही हूँ तो ऐसा लग रहा है कि कुछ कहानियाँ बच्चे भी ज़रूर जानते होंगे, लेकिन कभी मैंने उनसे पूछा नहीं। अगर पूछती तो उनको भी बोलने का मौक़ा मिल सकता था। हो सकता है कक्षा में नियमित ऐसा करने पर ये घर से नई कहानियाँ सुनने और कक्षा में सुनाने की कोशिश शुरू कर देते।"

विराज ने कहा, "आपने तीन उदाहरण रखे। उनमें मुझे एक जो बात दिखाई दे रही है वह यह कि बाद की दोनों प्रक्रियाओं में बच्चे चुपचाप सुनने वाले की भूमिका में नहीं हैं। उन्हें सोचने और ख़ुद से करने के मौक़े मिल रहे हैं। इससे एक फ़ायदा तो दिख रहा है कि वे जो करेंगे उससे हमें पता चल सकेगा कि उनके दिमाग़ में क्या चल रहा है। उनका काम, उनकी बातचीत उनके दिमाग़ में झाँकने वाली खिड़की का काम करते हैं।"

गोकुल ने विराज की बात में एक बात और जोड़ी। उन्होंने कहा, "मैं भी अपनी कक्षा में सबकुछ ख़ुद ही करता रहता हूँ। इससे यह तो लगता है कि काम जल्दी से पूरा हो गया, लेकिन पता नहीं चलता कि किस बच्चे ने समझा किसने नहीं। पूछने पर सभी बच्चे एक स्वर में कहते हैं, 'हाँ सर, समझ गए'।"

सुनील ने कहा, "ऐसा लगता है कि ये तरीक़े ज़्यादा कारगर हैं जिनमें बच्चों का सोचना और करना शामिल है किन्तु कक्षा में यह होगा कैसे? क्या ऐसा कोई पाठ आप पढ़ाकर बता सकेंगे? इससे हो सकता है हमें कोई दिशा मिले।"

मैंने शिक्षक साथियों से कहा कि मैं एक प्रयास ज़रूर करूँगा। मुझे नहीं मालूम कि यह कक्षा सही मायनों में एक उदाहरण बन सकेगी। और यदि ऐसा हुआ भी तो आप उसे कोई मानक कक्षा के रूप में स्वीकार न करें, नहीं तो

आपकी सोच उसके साथ बँधकर रह जाएगी। आप जब काम करें तो वैसा ही न करें। मेरा जो भी ढंग हो वह कई तरीक़ों में से एक होगा।

कक्षा अनुभव

कक्षा में वापस आने की घण्टी बजी। थोड़ी ही देर में सभी बच्चे अपनी-अपनी कक्षा में पहुँच गए। शिक्षक उनको कुछ काम देकर हॉल में आ गए जहाँ तीसरी और चौथी कक्षा के बच्चे सम्मिलित रूप से बैठे थे।

इतनी देर में मैंने तय कर लिया था कि इन बच्चों के साथ 'वृत्त' पर बात करूँगा, क्योंकि वे इसे अपने आसपास अलग-अलग वस्तुओं में देखते हैं पर साथ ही दूसरी चिन्ता जो दिमाग़ में चल रही थी वह थी बच्चों के साथ बातचीत की भाषा क्या चुनूँ। मैंने देखा कि बच्चे छत्तीसगढ़ी में बात कर रहे थे। शिक्षकों के साथ उनके संवाद की भाषा भी यही थी। एक अपरिचित व्यक्ति के रूप में मैं यदि उनके साथ हिन्दी में बात करूँ तो पता नहीं वे मेरे साथ जुड़ना पसन्द भी करेंगे या नहीं। और यदि शिक्षक बच्चों के साथ जुड़ न सका तो सम्प्रेषण की स्वीकार्यता भी स्थापित न हो सकेगी। छत्तीसगढ़ी का उपयोग मैं व्यक्तिगत बातचीत में तो करता रहा हूँ, लेकिन कक्षा को इसमें कभी सम्बोधित नहीं किया था। बड़ी हिचकिचाहट महसूस हो रही थी, पर मैंने तय किया कि छत्तीसगढ़ी में ही बात करूँगा।

विराज मुझे लेकर उस कक्षा में गए। बच्चों ने लम्बे सुर में 'गुडमार्निंग सर...' कहा। मैंने भी उसी अन्दाज़ में 'नमस्ते' कहा। विराज ने मेरा परिचय कराया और कहा कि मैं उनसे बातें करूँगा।

एक बच्चे के बस्ते के पास कपड़े की बनी एक गेंद रखी थी। मैंने उसे उठाया और उलट-पलट कर ध्यान से देखा। वज़न और आकार के अच्छे तालमेल से बनी वह गेंद सचमुच अच्छी बनी थी। मैंने मुस्कुराकर पूछा, "बड़ सुग्घर बने है, कोन बनाइस एला?" (बड़ा सुन्दर बना है किसने बनाया इसे?)

जिस बच्चे ने बनाया था उसने शरमाकर सिर झुका लिया। दूसरे बच्चे उसकी ओर मुस्कुराकर देखने लगे। बोलकर किसी ने जवाब नहीं दिया। जवाब तो मिल गया पर मैं चाहता था बात शुरू करें। मैंने फिर कहा, "अब्बड़ बढ़िया गेंद बनाए हस जी। महूँ ल सिखाबे?" (बहुत बढ़िया गेंद बनाए हो जी! मुझे भी सिखाओगे?)
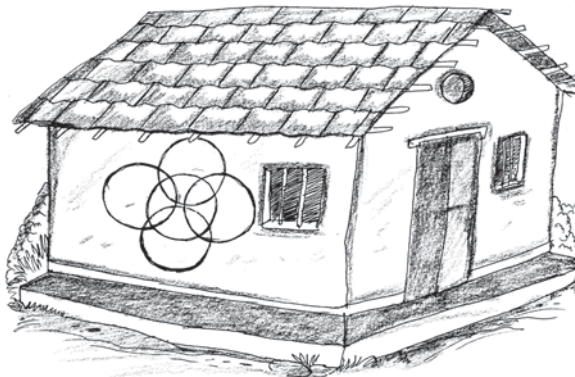
चित्र : हीरा धुर्वे

अब यह बच्चा खड़ा हो गया। उसके चेहरे पर संकोच, ख़ुशी और गर्व के मिले-जुले भाव थे। उसने अपना चेहरा छुपाते हुए धीरे से कहा, "हा हो, सरजी।" (हाँ, सरजी।)

"बेटा! तोर नाँव का है?" (बेटा, तुम्हारा नाम क्या है?) मैंने पूछा।

"कातिक!"

"अच्छा! तो ले बता कातिक कइसे बनाए?" (अच्छा तो बताओ कातिक कैसे बनाई?)

"सरजी, टेलर इहाँ ले थोकन चेंदरी लाएँ। ओला गोल-गोल गुरमेट के सुतरी ले बाँधेंव।

तहाँ ले सुतरी ल चारों डहर अउ लपेटेंन। फेर एला एकठन जुन्ना मोजा में ख़ुसेर देंव। अउ सूजी धागा ले सिल देंव।" (सरजी! टेलर के यहाँ से थोड़ी कतरन लाया। उसे गोल-गोल ऐंठकर सुतली यानी सन की डोरी से बाँध दिया। इसके बाद सुतली को चारों ओर लपेट दिया। फिर से एक पुराने मोजे में घुसा दिया और सुई-धागे से सिल दिया।)

"वाह भई, वाह!" ऐसा कहकर मैंने ज़ोर से ताली बजाई। सारे बच्चे तालियाँ बजाने लगे। जब तालियों का शोर कम हुआ तो मैंने पूछा, "अच्छा, मोला अब ये बतावा के गेंद ला चाक के डब्बा सँही चौखुँटा काबर नई बनाएँ?" (अच्छा! मुझे अब यह बताओ कि गेंद को चॉक के डिब्बे की तरह चौकोन क्यों नहीं बनाते?)

कक्षा शान्त हो गई। सारे बच्चे सोचने लगे। एक बच्ची ने धीरे से कहा, "धरत नई बनहीं सरजी!" (पकड़ते नहीं बनेगा सरजी!)

"बढ़िया।" मैंने कहा।

दूसरे बच्चे ने हाथ उठाया और कहा, "चाक के डब्बा हर गेंद सँही नईं ढुलगै सरजी।" (चॉक का डिब्बा गेंद की तरह लुढ़कता नहीं सरजी!)

बातचीत की गाड़ी अब चल पड़ी थी। एक बैरियर टूट चुका था।

"अच्छा! तो गेंद हर ढुलंगथे अउ चाक के डब्बा हर नई ढुलगै। एकरे बर गेंद ला चाक के डब्बा असन नई बनाएँ।" (अच्छा! तो गेंद लुढ़कती है और चॉक का डिब्बा नहीं लुढ़कता। इसीलिए गेंद को चॉक के डिब्बे जैसा नहीं बनाते।)

"ठीक! तो अब ये बताबौ के अउ का का जिनिस हर ढुलंगथे?" (ठीक! तो अब यह बताओ कि और कौन-कौन सी चीज़ें लुढ़कती हैं?)

कक्षा एक बार फिर सोचने वाले मोड में चली गई। इस बार बच्चे आगे-पीछे और अगल-बग़ल वाले साथियों के साथ ख़ुसुर-पुसुर करने लगे। मैंने उनकी इस बातचीत को रोकने की कोशिश नहीं की। मुझे ऐसा लगता है यह उद्देश्यपूर्ण और सार्थक विमर्श का एक सुन्दर अवसर होता है जब बच्चे मिलकर किसी समस्या का हल ढूँढ़ते हैं, अपने विचार रखते हैं, परखते हैं, कभी निरस्त करते तो कभी चुनते हैं।

दो-तीन मिनट में ही वे मेरी ओर देखने लगे। उनके चेहरे बयाँ कर रहे थे कि उन्होंने कुछ-कुछ जवाब तो ढूँढ़ ही लिए हैं।

"कोन बताही जी?" (कौन बताएगा जी?) मैंने हँसकर पूछा।

बहुत-से बच्चों ने हाथ उठा दिए। कुछ कहने लगे, "मैं बतावों सरजी? मैं बताहूँ सरजी।" सच कहूँ, बच्चों का ये उतावलापन, उनके चेहरे पर दमकता आत्मविश्वास, ख़ुद को साबित करने की उनकी ललक मुझे आनन्द और ऊर्जा से भर देती है। कभी सोचता हूँ तो लगता है यह भी उन चीज़ों में से एक है जो मुझे बच्चों से भरी कक्षाओं की ओर खींचती हैं, ख़ैर!

बच्चों की आतुरता देख मैं बोर्ड के पास आया और कहा, "चाक लेवा अउ अपन-अपने उत्तर ला बोर्ड का लिखा।" (चॉक लो और अपने-अपने उत्तरों को बोर्ड पर लिखो)।

आधे से अधिक बच्चे बोर्ड पर झूम गए। कोई बैठकर, कोई खड़ा होकर, जहाँ जगह दिखी वहाँ अपना उत्तर लिखने लगे। थोड़ी ही देर में सब अपनी-अपनी जगह पर जा बैठे। अभी-भी उनकी बातचीत जारी थी। अब उनकी चर्चा के विषय दूसरे बच्चों के जवाब थे। वे अपनी कल्पनाओं में उन्हें लाकर जाँच रहे थे कि सचमुच क्या वे चीज़ें लुढ़कती हैं। उन्होंने जो लिखा था उनमें ये नाम शामिल थे :

बॉटी (कंचा), चक्का, चूड़भ् (चूड़ी), सिक्का, गेंद, चॉक, लाडू (लड्डू), भौरा (लट्टू), टायर, बोतल, मरकी (मटका), पाइप, थारी (थाली), गिलास, आदि।

इनपर थोड़ी और बातचीत हुई। इस सूची में से उन्होंने कुछ चीज़ों के बारे में कहा कि कभी लुढ़कती हैं, कभी नहीं। यह इस बात पर निर्भर करता है कि फ़र्श पर उन्हें किस तरह रखा गया है, जैसे– टायर, चूड़ी, गिलास, सिक्का। वे इस प्रकार बेलनाकार, चकती या डिस्क और वृत्ताकार चीज़ों को गोलों से अलग करके देख पा रहे थे। उनके शब्द भण्डार में अभी ये गणितीय शब्द शामिल नहीं थे, पर गुणों के आधार पर उन्होंने इनके बीच अन्तर को अपने ढंग से अच्छी तरह से व्यक्त कर लिया।

कक्षा में पूरा संवाद छत्तीसगढ़ी में हुआ। लेकिन आगे की बातचीत को मैं सीधे हिन्दी में लिखता हूँ। मैंने उनसे पूछा, "वे कौन-कौन सी चीज़ें हैं जो सामान्य परिस्थितियों में समतल पर लुढ़केंगी ही।" उनका जवाब था, "गेंद, कंचा, लड्डू कैसे भी रखे जाएँ, लुढ़केंगे।" यानी जो चीज़ें गोल होंगी वे लुढ़केंगी ही।

चूड़ी, चक्का, टायर, सिक्का जैसी चीज़ों के बारे में उन्होंने कहा, "यदि इन्हें ज़मीन पर 'लिटा दिया जाए' तो ये नहीं लुढ़केंगी। इन्हें खड़ा करके धकेलने पर ही ये लुढ़केंगी।"

अब मैंने पूछा, "हम गोला किसे कहें?"

"सरजी! गेंद, बॉटी और लड्डू गोले हैं।"

"तो क्या चूड़ी, सिक्के और टायर को गोल कहें?" मैंने सवाल पूछा।

उनके सामने ये उलझन पैदा हो गई कि इसे हम गोल तो कहते हैं किन्तु ये तो गेंद से अलग हैं। थोड़ी देर वे आपस में बातें करते रहे पर कोई विचार या जवाब उनकी ओर से नहीं आ रहा था। वे मेरी ओर एक अपेक्षा लिए देख रहे थे। बात थोड़ी आगे बढ़े, यह सोचकर मैंने कहा, "देखो! गेंद, चूड़ी और सिक्के जैसी चीज़ें किसी-न-किसी रूप में गोलाई लिए हुए हैं, लेकिन इनमें थोड़े गुण अलग-अलग भी हैं। इनमें से जितनी भी चीज़ें गेंद से मिलती-जुलती हैं उन्हें एक नाम दिया गया है 'गोला'।"

"क्या तुम्हें लगता है चूड़ी और सिक्के जैसी आकृतियों का भी कोई अलग नाम होना चाहिए?"

"हाँ सर! होना तो चाहिए।" कुछ अस्फुट, अस्पष्ट सी प्रतिक्रिया सुनाई दी।

"तुम्हारी किसी किताब में चूड़ी जैसी आकृतियों के बारे में थोड़ी जानकारी दी गई है। तुम चाहो तो वहाँ देख सकते हो।"

छूटते ही बच्चों ने प्रश्न दाग दिया, "कौन-सी किताब में है सरजी?"

मैंने मुस्कुराकर कहा, "भई, यह तो तुमको सोचना पड़ेगा।"

उन्हें यह निश्चित करने में समय नहीं लगा कि यह जानकारी गणित की पुस्तक में हो सकती है। आनन-फ़ानन में तीसरी और चौथी कक्षा की पुस्तकों के पन्ने फड़फड़ाने लगे। जल्दी ही उन्होंने कक्षा चार की गणित की पाठ्यपुस्तक में 'वृत्त' का पाठ ढूँढ़ लिया। दो-चार बच्चे दौड़कर दिखाने मेरे पास भी आ गए। एक होड़ थी, पहले किसने खोजा। इन बच्चों से दूसरे बच्चों ने पाठ या पृष्ठ क्रमांक पूछकर वृत्त का पाठ खोल लिया।

तीसरी कक्षा के बच्चे, चौथी के उन बच्चों के पास चले आए जिनके हाथों में किताब थी।

दो-तीन मिनटों में ही हर किताब के साथ तीन या चार बच्चे थे। जिस बच्चे के सामने किताब रखी थी उसके अगल-बग़ल एक-एक बच्चा और कहीं-कहीं किताब वाले बच्चे की पीठ पर लगभग लदा हुआ चौथा बच्चा भी। कक्षा में आवाज़ें गूँजने लगी थीं। आठ-दस मिनटों के बाद ये गुंजन बाज़ार में उठने वाली आवाज़ में बदल गई। अब वे आपस में बातें कर रहे थे। जिसे शंका थी वह सवाल कर रहा था, जिसे थोड़ा समझ में आया वह आश्वस्त होने के लिए सहमति माँग रहा था, कोई दूसरे को समझाने की कोशिश कर रहा था। गणितीय शब्दों की परिभाषाएँ छत्तीसगढ़ी में रची जा रही थीं। नए उदाहरण, नई व्याख्या की रचना हो रही थी। उन्हें आसपास की कोई सुध नहीं थी। सभी अपने छोटे-छोटे समूहों में बातचीत में खोए थे। कहीं-कहीं दो-तीन समूह इकट्ठे होकर बातें कर रहे थे।

हम बच्चों के बारे में क्या-क्या भ्रान्तियाँ पालकर रखते हैं? वे पढ़ नहीं सकते, वे कुछ जानते नहीं, समझते नहीं और गणित तो कर ही नहीं सकते और भी न जाने कैसी-कैसी सोच हमारे बीच व्याप्त है। लेकिन वह कक्षा कुछ और कहानी कह रही थी। मैंने उन शिक्षक साथियों की ओर चुपके से देखा। वे एकदम चुप खड़े थे मानो उन्हें विश्वास ही नहीं हो रहा था कि दिनभर धमा-चौकड़ी मचाने वाले, नाक में दम करने वाले बच्चे भी इस तरह किताब में डूब सकते हैं।

थोड़ी देर में बच्चों ने कुछ-कुछ नई बातें जान ली थीं। अब वे बताने को उत्सुक थे। उसमें उनके चेहरे पर जो आत्मविश्वास था, आँखों में जो चमक थी वह मैं भुला नहीं सकता। मेरे चेहरे पर मुस्कुराहट आई तो वे सब भी थोड़े शरमाए-से मुस्कुराने लगे।

"कुछ पता चला?" मैंने पूछा।

"हाँ, सरजी!" एक समवेत स्वर उठा।

"तो बताओ।"

"सरजी। चूड़ी विरीत्त (वृत्त) जैसी है", एक बच्चे ने कहा।

"सिक्का भी थोड़ा-थोड़ा विरीत्त (वृत्त) जैसा है।" एक बच्ची ने संकोच के साथ कहा।

"थोड़ा-थोड़ा वृत्त जैसा माने?" मैंने उस बच्ची से पूछा।

"सरजी, चूड़ी के बीच जगह ख़ाली है, सिक्का पूरा भरा-भरा है।"

"अच्छा! और क्या-क्या बातें मालूम हुईं? कोई नया शब्द भी मिला क्या?"

"हाँ सरजी! कई नए शब्द मिले।"

"उनको बोर्ड पर लिखेंगे क्या?" मैंने उनसे पूछा।

"हाँ सरजी।"

कुछ बच्चे उठे। उन्होंने बोर्ड पर ये शब्द लिखे :

आकृति, कील, परकार, केन्द्र, रेखाखण्ड, त्रिज्या, व्यास।

"बढ़िया ! इन्हें थोड़ी देर में समझेंगे। क्या और कोई बात पता चली?" मैंने पूछा।

"सरजी, विरीत्त बनाने का तरीक़ा भी दिया है।" एक बच्ची ने कहा।

"हम लोग पहले से जानते हैं सरजी विरीत्त बनाना। हमारे घर की दीवार में हम लोग इसे बनाते हैं। महावर, सेम के पत्तों का रंग और गोबर में कोयला चूरा मिलाकर रंग बनाकर उसमें भरते हैं। बस विरीत्त नाम भर नहीं जानते थे।"

"अरे वाह, क्या बात है!"

"सरजी! बिल्ला खेलने के लिए भी हम लोग ज़मीन पर चौकोन डिब्बा या विरीत्त बनाते हैं।" एक दूसरी बच्ची ने जोश में भरकर कहा।

लड़के भी चिल्ला पड़े, "इन्हीं लोग ही नहीं जानते सरजी, हम लोग भी गिल्ली खेलने के लिए वृत्त बनाते हैं।"

वृत्त को लेकर उनका ज्ञान फूट-फूटकर बाहर आ रहा था। वृत्त उनके लिए अब केवल एक गणितीय आकृति भर नहीं था। वह उनके खेल, संस्कृति और जीवन का हिस्सा बनकर उभर रहा था। वह अब किताब से बाहर निकलकर हम सभी के आसपास नाचता-खेलता दिखाई पड़ रहा था। मैंने सोचा, देखा जाए उनके पास उनके अपने क्या-क्या तरीक़े हैं वृत्त बनाने के।

मैंने कहा, "तो क्या हम बाहर मैदान में चलें? वहीं सब लोग वृत्त बनाएँगे।" मेरा प्रस्ताव सुनकर उन्हें मज़ा आ गया।

"तो फिर चलो।" मेरे इतना कहने की देर थी, सारे बच्चे एक मिनट से भी कम समय में बरामदे से उतरकर छोटे मैदान में पहुँच गए। उनकी छोटी-छोटी टीमें भी बन गईं। वे उन चीज़ों की जुगाड़ करने में जुट गए जिनसे वृत्त बनाने की कल्पना उनके दिमाग़ में थी। मैदान साफ़ और समतल था। ज़मीन थोड़ी रेतीली थी। थोड़ा खुरचने पर आसानी से निशान बन सकते थे।

हर समूह के तरीक़े अलग-अलग थे। मैं बारी-बारी उनके पास जाकर देखता रहा कि वे क्या कर रहे हैं। सब ज़ोर-ज़ोर से बातें कर रहे थे। कोई नया आइडिया सुझा रहा था, कोई लाए गए सामान को देखकर उसपर बातें कर रहा था कि इससे कितना बड़ा वृत्त बन सकेगा। कोई अपने साथियों को निर्देश दे रहा था तो कोई साथी से कह रहा था, "तेरे से नहीं बना। ला, मैं अच्छा वाला बनाता हूँ।" इस बीच यह सारा शोरगुल सुनकर अन्य कक्षाओं के बच्चे भी वहाँ आ गए। उन्हें भी यह सब एक मज़ेदार तमाशा लग रहा था।

सुनील ने उन्हें कहा, "चलो जाओ तुम लोग, कक्षा में बैठो।" मैंने हँसकर कहा, "सुनीलजी! देखने दीजिए इन्हें भी।"

एक समूह में दो बच्चे लकड़ी के टुकड़े का उपयोग कर वृत्त बनाने की कोशिश कर रहे थे। एक बच्चे ने लकड़ी के एक सिरे को ज़मीन पर एक बिन्दु पर टिका रखा था। दूसरे बच्चे ने लकड़ी के दूसरे सिरे पर अपनी तर्जनी इस प्रकार रखी कि यह सिरा ज़मीन से थोड़ा ऊपर उठा हुआ था। वह पीछे की ओर धीरे-धीरे हटता हुआ उँगली से ज़मीन पर निशान बनाता जा रहा था। यह उस समूह की अपनी ईजाद थी। उन्हें यहाँ एक कठिनाई हो रही थी। जब वृत्त पूरा बनने को आता था तब आरम्भ बिन्दु और अन्त बिन्दु ठीक एक जगह पर नहीं आ रहे थे। उन्होंने मिटा-मिटा कर तीन-चार बार कोशिश की पर बात नहीं बनी। जो बच्चा अपनी उँगली से निशान बना रहा था उसने इसका कारण समझ लिया। उसने खीझकर अपने साथी को डाँटा, "बने धर न बे, घेरी-बेरी खसल जात हे। कुछुच्च बुता ला नई करे सकस।" (ठीक से पकड़ न बे, बार-बार खिसक जा रहा है। किसी भी काम को नहीं कर सकता।)

चित्र : हीरा धुर्वे

"रहिबे, ये दारी नई खसलै।" (ठहरो, इस बार नहीं खिसकेगा।)

दूसरे बच्चे ने बिना नाराज़ हुए कहा। उसने पत्थर का एक टुकड़ा लाकर एक छोटा-सा

गड्ढा बनाकर अपनी उँगली रखी और लकड़ी के सिरे को उँगली से सटा लिया।

फिर अपने साथी से कहा, "ले अब बना तो तोर संगे-संग महूं किंदरहूँ।" (ले अब बना तो, तेरे साथ-साथ मैं भी घूमता जाऊँगा।)

उनकी ये बहुत कामयाब कोशिश थी।

मैंने कहा, "कमाल कर दिए तुम लोग तो।"

वहीं पास ही कुछ बच्चियाँ थाली को ज़मीन पर उलटकर वृत्त की आकृतियाँ बना रही थीं। मैंने उनसे कहा, "वृत्त से दीवार पर जो चित्र बनाती हो वह बनाओ। मैं देखना चाहता था कि वे वृत्त की परिधि पर केन्द्र का चुनाव कर

चित्र : तरन्नुम निशा

नए वृत्त का चित्र कैसे बनाती हैं। उन्होंने पहले एक वृत्त बनाया। बड़ी सावधानी से ठीक बीच की जगह चुनकर एक निशान बनाया। यह वृत्त का केन्द्र था, यह बात और थी अभी उन्हें यह नाम और इसका अर्थ मालूम नहीं था। अब थाली को उठाकर उसे वृत्त पर इस तरह रखा कि थाली का किनारा केन्द्र को छू रहा था। थाली के किनारे-किनारे लकड़ी से कुरेदकर उन्होंने दूसरा वृत्त बनाया। कमाल तो तब हुआ जब उन्होंने इस दूसरे वृत्त का केन्द्र पहले वृत्त की परिधि पर बनाया और तीसरा वृत्त बनाने के लिए थाली का किनारा पहले और दूसरे केन्द्र से छूते हुए रखा। मैं उनके इस स्वाभाविक ज्ञान से चकित था। इसी तरह उन्होंने पहले वृत्त की परिधि पर केन्द्र रखते हुए छह वृत्त बनाए। पूरी आकृति में इतनी सुन्दर सममिति थी कि क्या कहूँ। बचपन में ऐसी आकृतियाँ हमारी पीढ़ी के लोगों ने भी बनाईं लेकिन हम लोगों ने परकार जैसी चीज़ों का उपयोग किया था। इन बच्चियों ने अद्भुत काम किया था।

बच्चियों का एक दूसरा समूह अलग ही ढंग से काम कर रहा था। वे अपने पाँव को ज़मीन पर घुमाकर अँगूठे से वृत्त उकेर रहे थे। उनकी एड़ी उस वृत्त के केन्द्र पर थी। उन्होंने भी बीच वाले वृत्त के चारों ओर छह वृत्त बनाए थे किन्तु ये सभी बाहरी वृत्त भीतरी वृत्त को केवल स्पर्श कर रहे थे। गणितीय दृष्टि से यह काम अधिक कठिन था। पहले वृत्त को बनाने के बाद एड़ी कहाँ रखें कि बनने वाला दूसरा वृत्त पहले को स्पर्श करे। इससे ज़्यादा मुश्किल तीसरे वृत्त का केन्द्र निर्धारित करना था क्योंकि तीसरा वृत्त पहले और दूसरे को स्पर्श करता हुआ बनना था। यदि इसे आप परकार से बनाने का प्रयत्न करें तो कठिनाई का अनुमान ज़रूर लगा पाएँगे।

एक और समूह की ओर मैंने देखा। एक बच्चे ने पेंट में से अपनी बेल्ट निकाल ली थी उसे लेकर अपने साथियों से कुछ कह रहा था।

मैं उनके नज़दीक गया। देखा कि वे किताब में दिए तरीक़े को आज़माने की बात कर रहे थे। उन्होंने बेल्ट को रस्सी के विकल्प के रूप में चुना था। मैंने उन सबकी पीठ थपथपाई और कहा, "बनाओ।"

थोड़ी देर में सभी समूहों ने वृत्त बना लिए। कुछ के तरीक़े मिलते-जुलते थे तो कुछ के एकदम अलग और अनूठे। एक बात और हुई। सबने एक दूसरे के काम को देखा, काम करने के तरीक़े को समझा। मैंने सोचा था बारी-बारी से हर समूह से कहूँगा कि अपने काम के बारे में बताएँ। पर इसकी ज़रूरत नहीं पड़ी, उन्होंने ख़ुद से यह कर लिया।

सभी बच्चों को मैंने अपने पास बुलाया। उनसे कहा कि सब ख़ुद के और अपने साथियों

के लिए ज़ोर से तालियाँ बजाएँ। बड़ी ज़ोर की गड़गड़ाहट हुई।

मैंने कहा, "बच्चो! तुम सभी ने बहुत बढ़िया तरीक़े से काम किया है। मैं सोच भी नहीं सकता था कि तुम इतने तरीक़ों से वृत्त बना सकते हो। मैं 'वृत्त' शब्द को ज़ोर से बोल रहा था ताकि वे ठीक से इस नए शब्द की ध्वनि सुन सकें। तुमने बोर्ड में जो कठिन शब्द लिखे थे उनमें केन्द्र और त्रिज्या जैसे शब्द थे। अब तुम सभी को अपने-अपने वृत्त में केन्द्र व त्रिज्या को पहचानना और बताना है। इस काम के लिए तुम अपनी पुस्तक को एक बार फिर ध्यान से देख सकते हो।

उन्होंने पाठ के उस हिस्से को पढ़ा। आपस में बातें कीं। मुझे अपने-अपने वृत्तों के पास ले गए। वृत्त का केन्द्र बताया और त्रिज्या खींचकर दिखाई। इस बात की गुंजाइश ही नहीं छोड़ी कि मैं उन्हें कुछ बताऊँ।

उनके कुछ संशय अभी दूर नहीं हुए थे, जैसे– केन्द्र और त्रिज्या के नाम में अक्षरों का प्रयोग। एक बच्ची ने पूछ ही लिया, "क ख और प म क्या हैं?" मैंने कहा, "जैसे तुम्हारा, मेरा, हम सभी का कोई-न-कोई नाम है, वैसे ही हम अपने आसपास की सभी चीज़ों का नाम रखते हैं जिससे उनके बारे में बातचीत हो सके।" उन्होंने नामकरण के इस पैटर्न को समझा या नहीं, यह जाँचने के लिए मैंने कहा, "तुम सबने जो वृत्त बनाए हैं उनमें केन्द्र और त्रिज्याओं के नाम लिखो।" उन्होंने थोड़ी मशक़्क़त के बाद यह भी कर लिया। एक मज़ेदार बात और हुई। जिस बच्चे ने जिस वृत्त को बनाया था उसे दूसरे बच्चे उस वृत्त की त्रिज्या के नाम से बुलाने लगे, "ए प न"!

"काय रे म स?" (क्या है रे म स?)

"तोर विरीत्त ह तो अब्बड़ जनिक है।" (तेरा वृत्त तो बहुत ही बड़ा है।)

"हा हो! मोर विरीत्त के तिरिज्जा घलोक बड़ जनिक हे।" (हाँ! मेरे वृत्त की त्रिज्या भी तो बड़ी है।)

उनके उच्चारण पर बार-बार मेरा ध्यान जा रहा था। किन्तु मैं इसपर उन्हें कुछ कहना नहीं चाह रहा था। ये शब्द उनके लिए अनसुने थे। मैं कोशिश कर रहा था कि जब भी त्रिज्या, वृत्त शब्द बोलूँ तो ज़ोर से और स्पष्ट बोलूँ। देर-सवेर वे ख़ुद ही इसे ठीक कर लेंगे।

बहुत समय तक बच्चों ने काम किया। अभी भी कुछ चीज़ों पर बात नहीं हो सकी थी। मैंने एक सवाल पूछा, "तुम सबने अपने-अपने वृत्त में एक-एक त्रिज्या बनाई है, क्या वृत्त में एक से ज़्यादा त्रिज्या बन सकती हैं?" बच्चे एक दूसरे की ओर देखने लगे।

धूप थोड़ी तेज़ होने लगी थी। मैंने कहा, "चलो अब कक्षा में चलें।" कक्षा में दीवारों पर तीन फीट ऊँचाई तक चारों ओर काला पेंट लगा हुआ था, जिसका उपयोग बच्चे बोर्ड की तरह करते थे। मैंने कहा, "दीवार वाले बोर्ड पर फिर से एक-एक वृत्त बना लेना। अब रस्सी, लकड़ी या धागे की ज़रूरत नहीं है। अनुमान से बनाना। देखना है कि एक से ज़्यादा त्रिज्या बन सकती हैं क्या?"

सभी बच्चे हॉल में आकर दीवार किनारे बैठ गए। फ्रीहैण्ड ड्राइंग से उन्होंने वृत्त बनाया। केन्द्र से परिधि तक उन्होंने लाइनें खींचनी शुरू

कर दीं। उन्हें यह समझने में वक़्त नहीं लगा कि केन्द्र से शुरू करके परिधि के किसी भी बिन्दु तक जो सीधी लाइन खींची जाएगी वह त्रिज्या ही होगी।

जवाब आने लगे, "बाईस तिरिज्जा बनिस सरजी।"

"मोर विरीत्त पैंतीस ठन बनगे।"

"मैं सैंतालिस ठन बना डारें, तोर ले जादा।"

"सरजी! जतका बनाए बर चाही, ओकर ले जादा बन जाही।"

"हाँ सरजी! अब्बड़ अकन तिरिज्जा बन सकत हे।"

बच्चों के पास त्रिज्या की शाब्दिक परिभाषा नहीं थी किन्तु उन्होंने उसका अर्थ बना लिया था। उनके पास अनन्त शब्द नहीं था किन्तु 'अब्बड़ अकन' यानी बहुत सारी त्रिज्या बनाई जा सकती हैं, जितनी चाहें उससे भी ज़्यादा... यह समझ लिया था। मैंने उन सभी बच्चों के लिए तालियाँ बजाईं, उनके सभी शिक्षक मेरा साथ दे रहे थे। बच्चे उन्हें आश्चर्य से देख रहे थे।

मैंने कक्षा यहीं ख़त्म की। बच्चों के बाहर जाने के बाद मैंने शिक्षकों से कहा, "यदि वे इस कक्षा के सम्बन्ध में कुछ कहना-पूछना चाहते हैं तो कहें।" दिव्या के सवाल बच्चों के उच्चारण दोष को लेकर थे, "आपने सुधारा क्यों नहीं?" विराज ने कहा, "बच्चे किताब पढ़ रहे थे समझ भी रहे थे। मैंने कभी यह सोचा नहीं था।" गोकुल का कहना था, "थोड़ी-सी बात बताने के लिए बहुत समय लग गया। ये बातें दस मिनट से कम समय में समझाई जा सकती थीं।" सुनील ने इसका जवाब इस तरह दिया, "यही तो बड़ा फ़र्क़ था। बच्चों को कुछ भी समझाया नहीं गया, फिर भी सभी बच्चों ने समझा और ख़ुद से समझा, एक दूसरे से समझा, पढ़कर, करके समझा। सर ने या तो सवाल किए या कुछ सुझाया।" क़रीब आधे-पौन घण्टे उनके साथ जो बातें हुईं वे मेरे लिए भी बहुत महत्त्वपूर्ण थीं। संकुल समन्वयक आए तब बातचीत को विराम देना पड़ा। मुझे उनके साथ ही लौटना था।

डॉ. सुधीर श्रीवास्तव ने विगत चार दशकों तक डाइट और एससीईआरटी छत्तीसगढ़ में विभिन्न भूमिकाओं में कार्य किया है। आप अध्यापन, लेखन और शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रमों से सक्रिय रूप से जुड़े रहे हैं। राज्य की गणित की पाठ्यपुस्तकों की रचना में उनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। आप कई महत्त्वाकांक्षी शैक्षिक योजनाओं को छत्तीसगढ़ राज्य में क्रियान्वित करने में मुख्य भागीदार रहे हैं। साथ ही विभिन्न शैक्षिक तथा बाल-पत्रिकाओं में लेखन और सम्पादन कार्य का हिस्सा रहे हैं।

सम्पर्क : shrivastavasudhir512@gmail.com

युवक! क्या तुम शिक्षक बनोगे ?

अनिल सिंह

श्याम नारायण मिश्र द्वारा लिखित *अध्यापकीय जीवन का गुणनफल* एक लोकप्रिय शिक्षक के अध्यापकीय जीवन का आत्म-वृत्तान्त प्रस्तुत करती है। किताब में, स्वातंत्र्योत्तर भारत के आरम्भिक दशकों में उद्‌घाटित नवीन जनतांत्रिक चेतना किस तरह उत्तर बिहार के ग्रामीण-क़स्बाई परिवेश में संस्थानिक आकार ग्रहण करती है, कैसे वह नई जनाकांक्षाओं की संवाहक बनती है और किस तरह जाति-आधारित ग्रामीण व्यवस्थाओं के साथ उसका आरोपण-प्रत्यारोपण होता है, साथ ही और किस तरह के सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन हुए हैं, इन परिघटनाओं की झलक मिलती है। सं.
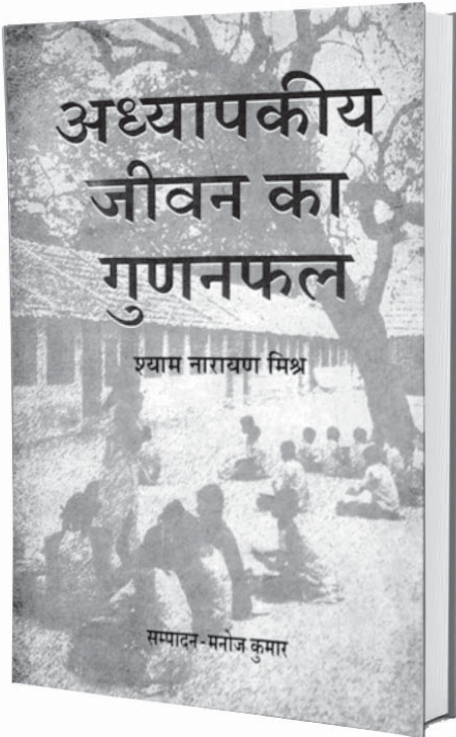
अध्यापकीय जीवन का गुणनफल

लेखक : श्याम नारायण मिश्र

अनन्य प्रकाशन

भारत में स्कूल शिक्षा के विकास की यात्रा और उसमें एक अध्यापक के समानान्तर जीवन व उसके योगदान की कहानी इतनी रोचक हो सकती है, यह इस किताब को पढ़ने से पहले नहीं कहा जा सकता था।

इस किताब में हम अपने अतीत के सामाजिक-सांस्कृतिक ताने-बाने और शिक्षा को लेकर समुदाय की छटपटाहट साफ़ देख सकते हैं। स्कूल संस्था के निर्माण का यह वक़्त दरअसल नए भारत के निर्माण का वक़्त भी रहा है। आज जिस स्कूल की, हम सरकार या किसी पूँजीपति के बिना कल्पना नहीं कर सकते वह समाज द्वारा तैयार किया जा रहा था और आम नागरिक व शिक्षक उसकी अगुआई कर रहे थे।

अपने अतीत और उसके गौरव को देखना कई बार इसलिए ज़रूरी और महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि हम जान सकें कि हम कैसे बने हैं, कैसे हम यहाँ तक पहुँचे हैं, क्या रही है हमारी यात्रा और हमने क्या खोया, क्या पाया है। और अगर वह किसी ऐसे व्यक्ति की ज़ुबानी मिले जिसने इस समय को गढ़ने में जीवन खपाया हो तो फिर वो एक ऐसा दुर्लभ दस्तावेज़ बन जाता है जिसे पीढ़ियाँ सँजोकर रखना चाहेंगी।

चित्र : सजल बैनर्जी

श्याम नारायण मिश्र उत्तरी बिहार के एक साधारण किसान परिवार से हैं। 38 वर्ष के उनके सेवाकाल का हर एक पड़ाव उस समय के शिक्षा जगत में एक नई चेतना और पहल की मिसाल रहा है। किताब में अपनी कथा कहते हुए लेखक कहीं भी इसे महिमामण्डित करता हुआ नहीं जान पड़ता। एक-एक प्रसंग और उसमें निहित मूल्य ख़ुद अपनी बात प्रमाणित करने में सक्षम हैं।

स्कूल संस्था निर्माण के लिए अपने व्यक्तिगत जीवन की प्राथमिकताओं को परे रख सामुदायिक सहयोग कमाना, शिक्षकों की आपसी गुटबन्दियों को सुलझाकर संस्था को मज़बूत बनाना, छात्रों के असन्तोष को शिक्षा की गुणवत्ता एवं बेहतर कार्यप्रणाली के दम पर ख़त्म करना और निरन्तर अपने कर्तव्य-पथ पर तटस्थ व अविचल रहना एक अध्यापक की ऐसी ख़ूबियाँ हैं जो इस किताब की कथावस्तु बन पाई हैं।

इसके एक-एक अध्याय, एक लोकप्रिय और कर्तव्यनिष्ठ शिक्षक के जीवन के विविध पड़ाव हैं। 'नई डगर को आँकते ज़िद्दी क़दम', शीर्षक से पहले अध्याय में मैट्रिक के बाद कॉलेज की पढ़ाई और फिर जयप्रकाश नारायण के 'समाजवादी आन्दोलन' व विनोबा के 'भूदान आन्दोलन' में निष्ठावान सक्रियता का ज़िक्र है। एक निर्लिप्त समाजकर्मी के रूप में जेपी के विचारों को लेकर युवकों से संवाद करना और विनोबा के आह्वान पर ज़मीन मालिकों से भूमिहीनों के लिए जमीन माँगे जाने के अभियान में जुटना एक परिपक्व क़दम दिखाई देता है। जान पड़ता है कि यह समय लेखक के वैचारिक रूप से गढ़े जाने का रहा है। 'अध्यापकीय जीवन का पहला पड़ाव', अध्याय में उन्होंने विज्ञान शिक्षक के रूप में जजुआर स्कूल में अपनी पहली सेवा के अनुभव लिखे हैं। प्रयोगशाला के लिए कच्चा-पक्का कमरा तैयार करने और जनसहयोग से उपकरण आदि की व्यवस्था जुटाने का ब्योरा सजीव है। विज्ञान शिक्षक रहते हुए इन्टरमीडिएट साइंस सर्टिफ़िकेट में अपने उत्तीर्ण होने की ख़बर मिलना और अख़बार में रिजल्ट देखने का बहुत ही रोचक वाक़या भी है इसमें। तीसरे अध्याय 'स्थायित्व की तलाश में', में वे डाक विभाग में सरकारी नौकरी मिलने के संयोग का ब्योरा रखते हैं; लेकिन जल्दी ही अध्यापक कर्म का महत्त्व उन्हें समझ में आ जाता है। वे अपने-आप को एक शिक्षक के रूप में ही देखते हैं जो इंसानों के साथ अन्तःक्रिया करता है। विद्यार्थियों को गढ़ना उन्हें चिट्ठियाँ छाँटने और दफ़्तर में बैठकर बाबूगिरी करने से ज़्यादा महत्त्व का समझ आता है। डाकपाल की सरकारी नौकरी छोड़ भागलपुर के स्कूल में

चित्र : सजल बैनर्जी

चित्र : सजल बैनर्जी

फिर से वापसी और स्थानीय लोगों द्वारा स्वागत करने की बात पाठक को भाव विभोर कर देती है। जितवरिया का विद्यालय उनकी प्रमुख कर्मस्थली के रूप में इस कथा में उभरता है जहाँ अपने पारिवारिक जीवन के साथ-ही-साथ संस्थान में सत्ता संघर्ष को सुलझाने, प्रबन्धकीय कौशल और अपने अध्यापन कर्म को निखारने के अनुभव, 'जैसे उड़ि जहाज़ को पंछी' अध्याय में बहुत ही जीवन्त रूप से आए हैं। स्व-अध्ययन और विद्यार्थियों की सतत प्रतिक्रिया से अपने अध्यापन कर्म को माँजने के बहुत ही सहज विवरण हैं। पाँचवें अध्याय 'संस्थाओं को गढ़ने, सँवारने का सुख', में साखमोहन विद्यालय में सामुदायिक सहयोग से हाई स्कूल की स्थापना, अतिरिक्त भवन का निर्माण, प्रयोगशाला बनाना, सरकारी मान्यता व अनुदान हासिल करना और विद्यालय क्षेत्र में विविध आयोजनों का बहुत ही गहन विवरण है जो एक शिक्षक के बहुआयामी रचनाशील व्यक्तित्व को बता पाने में सक्षम है। छठवें अध्याय 'शिक्षक आन्दोलन और सामाजिक सक्रियता के अन्य पड़ाव' में शिक्षक संघ में सांगठनिक क्रियाकलापों के साथ ही विद्यालयों के सरकारीकरण की माँग और आन्दोलन के चलते जेल यात्रा का भी वर्णन पढ़ने को मिलता है। पुपरी में बालिकाओं के लिए विद्यालय निर्माण और फिर चंदौना में कॉलेज की स्थापना का उनका संघर्ष पठनीय है। चोरौत विद्यालय को उसकी खोई हुई प्रतिष्ठा लौटाने और फिर सेवानिवृत्ति की उम्र तक वहीं अध्यापन और प्रबन्धकीय दायित्व निभाने के साथ इस कथा का समापन होता है। लेकिन सातवें अध्याय 'पुनः सवेरा, और एक फेरा है जी का' में लेखक अपने पारिवारिक दायरे में भारत भ्रमण के अनुभवों को साझा करने से नहीं चूकते। 'हर यात्रा जीवन को समृद्ध करती है', वाक्यांश पर समाप्त होने वाली यह जीवन गाथा अपनी सरलता, रोचकता और कसावट के लिए बार-बार पढ़ी जाने लायक़ है।

उस समय का कोई इतना प्रामाणिक दस्तावेज़ हमें मिलता नहीं है जो बता सके कि आज़ादी के शुरुआती दशकों में जो जनतांत्रिक चेतना अपना आकार ले रही थी और जिसके चलते शिक्षा के क्षेत्र में संस्थानिक निर्माण से लेकर राष्ट्र निर्माण तक के संकल्प दृढ़ हुए थे, उसके वाहक कौन लोग थे और वे क्या मूल्य थे जिनसे यह सब सम्भव हुआ। इस किताब में उन परिघटनाओं की झलक हमें मिलती है।

आज़ादी के इन सत्तर-पचहत्तर सालों में कितना कुछ बदल गया है। शिक्षा की धुरी, शिक्षक, आज अपनी पहचान और प्रतिष्ठा के लिए संघर्षरत है। ऐसे वक़्त में यह किताब शिक्षक पद, उसके दायित्व-बोध और उसके विस्तार का अन्दाज़ा लगाने का मौक़ा देती है।

आत्मकथात्मक शैली में बहुत ही सरल और सहज भाषा में लिखी गई ये किताब आज़ादी के आरम्भिक दशकों का ऐसा चित्र खींचती है कि आप उस समय में अपने-आप को पाते हैं। अनन्य प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित 190 पेज की इस अनूठी आत्मकथा का सम्पादन अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसर मनोज कुमार ने किया है। अच्छे लेखन पर अच्छे सम्पादन का बढ़िया उदाहरण है यह किताब।
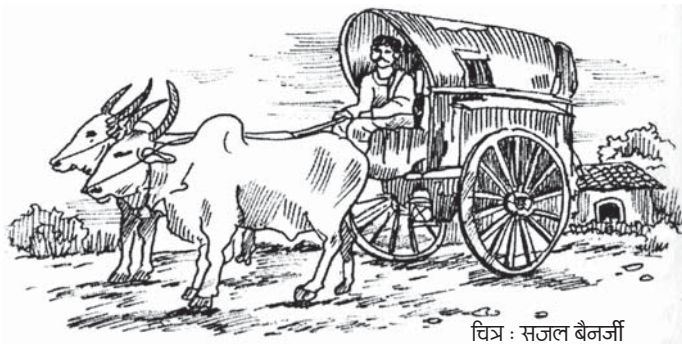
चित्र : सजल बैनर्जी

आवरण और भीतर के चित्रांकन सजल बैनर्जी ने किए हैं, जो हर अध्याय के साथ उसकी कहानी का दामन थामे हुए जान पड़ते हैं।

आलेख का शीर्षक, 'युवक! क्या तुम शिक्षक बनोगे ?', लेखक की ही एक कविता का शीर्षक है, जो शिक्षक आन्दोलन के उन दिनों में बहुत लोकप्रिय हुई थी।

अनिल सिंह पिछले ढाई दशक से विभिन्न स्वैच्छिक संस्थाओं के साथ मिलकर सामाजिक विकास के कार्य में संलग्न रहे हैं। 15 सालों से प्रारम्भिक शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत हैं। जन संचार, समाज कार्य एवं शिक्षा शास्त्र की पढ़ाई की। वर्तमान में टाटा ट्रस्ट, पराग इनिशिएटिव के लाइब्रेरी एजुकेटर कोर्स में बतौर फ़ैकल्टी जुड़े हुए हैं।

सम्पर्क : bihuanandanil@gmail.com

विशेष ज़रूरत वाले बच्चों के प्रति हमारे समाज को और अधिक शिक्षित एवं संवेदनशील होने की ज़रूरत है

शिक्षिका मीनाक्षी गौड़ के साथ दीपक कुमार राय की बातचीत
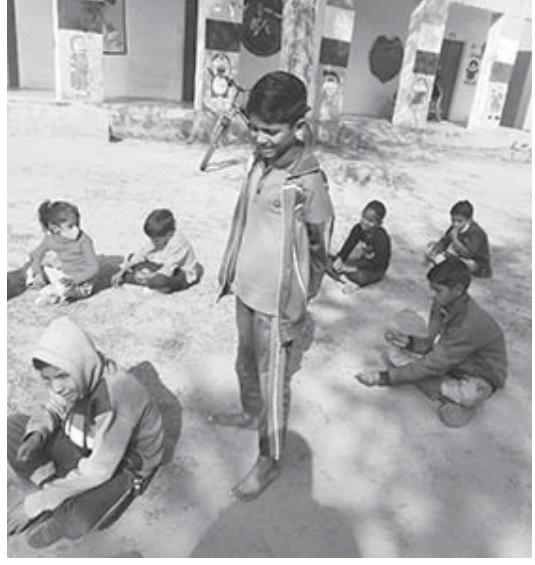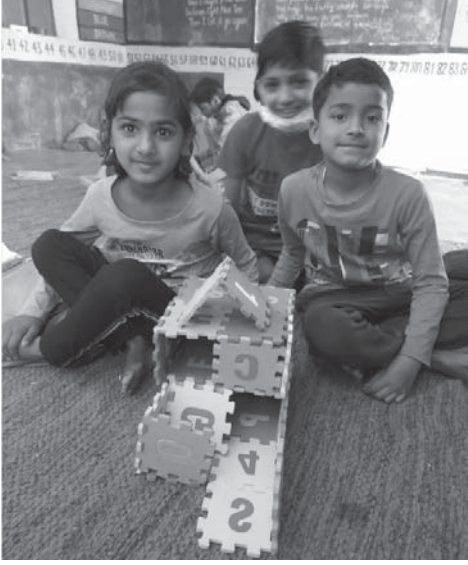
दीपक : अपने बारे में विस्तार से बताइए। घर, परिवार, समाज के बारे में, साथ ही आपकी रुचियाँ और सपने क्या-क्या थे?

मीनाक्षी : मेरा नाम मीनाक्षी गौड़ है। मैं अपने पति श्री नरेन्द्र कुमार शर्मा, दो बच्चों एवं सास-ससुर के साथ जयपुर में रहती हूँ। जन्म टोंक ज़िले के पारली गाँव में हुआ। प्रारम्भिक एवं माध्यमिक शिक्षा वहीं मिली। ससुराल जयपुर ज़िले के महापुरा ग्राम में है। हम मध्यमवर्गीय गौड़ समाज से ताल्लुक रखते हैं। पेंटिंग करना एवं लघु कथाएँ पढ़ना मुझे अच्छा लगता है। परित्यक्त एवं हाशिए पर कर दिए गए बुज़ुर्गों के लिए कुछ करना एवं उन्हें अपना स्थान और सम्मान दिलाना मेरा सपना है। बच्चों का साथ मुझे सँवारता है; चाहे घर हो या स्कूल।

दीपक : आप शिक्षिका कैसे बनीं? आप यही बनना चाहती थीं या ऐसा था कि नौकरी करनी ही थी, तो जो मिली, वह कर ली?

मीनाक्षी : बनना तो डॉक्टर था लेकिन ग्रामीण परिवेश, या यूँ कहें लड़कियों को निश्चित समय से ज़्यादा नहीं मिलता कुछ करने के लिए। शादी से पहले ख़ुद को सक्षम करना मेरा लक्ष्य था। मुझे कुछ आभास तो था कि हायर सेकेंडरी के बाद पढ़ने के लिए मुझे ज़्यादा समय नहीं मिलेगा और हुआ भी ऐसा ही। दो-तीन वर्ष ही मिले पढ़ने के लिए, तो मैंने बीएसटीसी करना ही उचित समझा। उसके बाद शिक्षिका ही बनना था और धीरे-धीरे यही पेशा मेरा सपना भी बनता गया। अपने-आप को समाज से जोड़ना पहला लक्ष्य था, चाहे कैसे भी हो। और यह पेशा समाज से जुड़ने का एक सशक्त माध्यम

है जहाँ आप आसानी से आमजन से जुड़कर कुछ सकारात्मक और सार्थक कर सकते हैं। जैसे-जैसे काम करती गई, पेशे से लगाव बढ़ता गया। और अब मुझे लगता है कि मैं तो इसी काम के लिए ही बनी थी।

दीपक : आप कितने सालों से पढ़ा रही हैं और किन स्कूलों में? ऐसे कुछ अनुभव साझा करें जिन्होंने आपको गढ़ा हो, आपके भीतर के शिक्षक या कि मनुष्य को।

मीनाक्षी : मैं क़रीब 20 सालों से पढ़ा रही हूँ। पहले 5 वर्षों तक मैंने प्राइवेट विद्यालय में पढ़ाया और सन् 2007 में सरकारी विद्यालय में मेरी नियुक्ति करौली ज़िले में हुई, वहाँ दो विद्यालयों में पढ़ाने का अवसर मिला। वह चुनौतीपूर्ण व रोमांचक यात्रा रही। पहली, तो वहाँ की क्षेत्रीय भाषा मेरे लिए बड़ी चुनौती थी। अध्यापन के लिए शिक्षक की विद्यार्थियों की मातृभाषा की समझ बहुत आवश्यक है। दूसरा, वहाँ रहकर उन बच्चों, उनके परिवारों के कठिन जीवन को मैं काफ़ी नज़दीक से देख पाई। उस कठिनता के बावजूद पढ़ाई के प्रति उनकी लगन ने मेरी सभी कठिनाइयों को काउंटर कर दिया। अब सन् 2018 से जयपुर ज़िले के विद्यालय में सेवाएँ दे रही हूँ। यहाँ के अनुभव और भी विविधता लिए हुए हैं। निजी विद्यालयों का आकर्षण सरकारी विद्यालयों के हाशियाकरण का कारण बना हुआ है। इस विद्यालय में मेरी नियुक्ति के समय विद्यालय का नामांकन शून्य था। आसपास की बस्ती के जो बच्चे पढ़ने को उत्सुक थे निजी विद्यालयों के हवाले थे। विद्यालय से दूर कच्ची बस्ती के ऐसे बच्चों को जो पढ़ाई से अलगाव रखते थे, उनमें पढ़ाई के प्रति लगन लगाना और विद्यालय तक लाना, कई सारे खट्टे-मीठे अनुभवों से भरा हुआ था। उनके अभिभावकों को समझाना, उनसे लड़ना भी, भागते बच्चों को पकड़ना एवं उन तक पहुँचने के लिए अपने ख़र्चे पर किराए पर ऑटो करना इन अनुभवों में शामिल हैं।

दीपक : कोविड-19 के दौरान आपके अनुभव क्या रहे?

मीनाक्षी : कोविड काल ने सरकारी विद्यालयों के लिए संजीवनी का कार्य किया। सरकारी प्रयासों ने अभिभावकों की आँखें खोल दीं। ऑनलाइन अध्ययन व्यवस्था का लाभ निर्धन विद्यार्थियों को नहीं मिल पा रहा था, इसके चलते मैंने विद्यार्थियों को समूहवार कुछ देर तक विद्यालय में बुलवाना उचित समझा। उन्हें विद्यालय में आते देख आसपास के अभिभावकों और बच्चों में भी विद्यालय से लाभ प्राप्त करने की रुचि जागी, और इस तरह विद्यालय में उन बच्चों का प्रवेश भी बढ़ गया जो कभी सरकारी विद्यालयों को तुच्छ एवं नकारा समझते थे। इस तरह पहले बने उनके तमाम मिथक या समझ, जो सरकारी विद्यालय के लिए थी, आधारहीन साबित हुई।

दीपक : आपकी चुनौतियाँ क्या रहीं? शिक्षक, ख़ासकर एक महिला के रूप में?

मीनाक्षी : निजी विद्यालयों से प्रतिस्पर्धा मुख्य चुनौती रही। सरकारी विद्यालय विद्यार्थियों को मूलभूत भौतिक सुविधाएँ नहीं दे पा रहे हैं। शैक्षणिक, सह-शैक्षणिक और भौतिक सुविधाएँ एवं अनुशासन में निजी क्षेत्र सरकारी स्कूलों से कुछ आगे ही रहे हैं। विद्यार्थियों एवं अभिभावकों में सरकारी विद्यालयों के प्रति आकर्षण और विश्वास जगाना मेरे लिए सबसे बड़ी चुनौती रही। समय की पाबन्दी महिलाओं के लिए एक बड़ी चुनौती की तरह है। वैसे है तो पुरुषों के लिए भी, लेकिन महिलाओं के लिए कुछ अधिक ही क्योंकि घर की ज़िम्मेदारियाँ अधिकांशतः उन्हीं के हिस्से आती हैं। विद्यालय समय पर जाना और इधर घर के भी सारे कार्य समय से ही करना; यह एक चुनौती तो हुई और यदि यह काम नहीं कर पाएँ तो महिलाओं को परिवार एवं समाज की उलाहनाओं का शिकार भी बनना पड़ता है।

कुछ यह भी रहा कि अकसर एक पुरुष और एक महिला के काम, उसके व्यक्तित्व, उसकी सामाजिक उपस्थिति को आँकने की कसौटियाँ अलग-अलग रखी जाती हैं; कई बार लगा कि इन सब चीज़ों का भी दबाव बनता है महिला पर और ऐसे में उसकी स्वाभाविक गति प्रभावित होती ही है।

दीपक : आप भाषा भी पढ़ाती हैं और गणित भी, तो क्या कुछ अन्दाज़ा है, कुछ अनुमान या अनुभव कि इन विषयों में बच्चों की चुनौतियाँ क्या हैं?

मीनाक्षी : भाषा सभी विषयों के अध्ययन के मूल में है। यह सभी विषयों को पढ़ाने का माध्यम उपलब्ध करवाती है। भाषा की बात करें तो पारम्परिक पद्धति से भाषा सीख पाना कुछ हद तक कठिन है। इस पद्धति में विद्यार्थियों को अभिव्यक्ति के अवसर कम मिलते हैं। पढ़ने के लिए पर्याप्त अवसर एवं सामग्री नहीं मिल पाती है अतः शब्द भण्डार की कमी रह जाती है। अभिव्यक्ति की विविधता और सम्भावनाएँ भी सिकुड़ जाती हैं। मातृभाषा या माध्यम भाषा की बनावट एवं शब्दों में कुछ अन्तर होता है। प्रारम्भिक अवस्था में यह अन्तर स्वीकार्य होने चाहिए।

गणित में यह चुनौतियाँ जस-की-तस हैं। गणित हो या भाषा, दैनिक जीवन से जोड़कर ही सिखाना उचित रहेगा अन्यथा बच्चे मात्राओं एवं हासिल में ही उलझकर रह जाते हैं। गणित जीवन से जुड़कर आसान होता है। सरकारी विद्यालयों में पर्याप्त शैक्षिक अधिगम सामग्री का अभाव भी एक बड़ी चुनौती है।

दीपक : अच्छा शिक्षक माने क्या? क्या सोचती हैं ऐसे सवालों के सन्दर्भ में?

मीनाक्षी : मेरे हिसाब से अच्छा शिक्षक वही है जो अपने विद्यार्थियों की क्षमता एवं स्वभाव को पहचाने और उसके अनुरूप व्यक्तिगत रूप से सम्बलन देते हुए शिक्षा दे। शिक्षा देना, यानी सीखना-सिखाना एक सहज प्रक्रिया का हिस्सा हो न कि कोई थोपी हुई या आरोपित गतिविधि।

दीपक : बच्चे के सीखने और उसके मूल्यांकन को आप कैसे सुनिश्चित करती हैं?

मीनाक्षी : जिस प्रकार सीखना एक सतत प्रक्रिया है, उसी प्रकार मूल्यांकन भी सतत प्रक्रिया है। सरकारी विद्यालयों में पढ़ने वाले विद्यार्थी उम्र एवं सीखने के स्तर के अनुसार कई समूह में बँटें होते हैं, उनका मूल्यांकन केवल पेपर-पेंसिल टेस्ट से नहीं किया जा सकता। सीखने के दौरान उनके द्वारा विषय की अवधारणात्मक समझ एवं उसके अनुप्रयोग को भी ध्यान में रखा जाना सुनिश्चित करती हूँ। कई

विद्यार्थियों की उपस्थिति निश्चित नहीं होती है। वे जब आते हैं और अध्ययन कर रहे होते हैं, तभी उनका आकलन एवं स्तर का निर्धारण करना आवश्यक होता है। कई विद्यार्थी लिखकर अपने-आप को अभिव्यक्त नहीं कर पाते परन्तु मौखिक रूप से यह कार्य अच्छी तरह से कर पाते हैं। मूल्यांकन में मौखिक अभिव्यक्ति भी स्वीकार्य होती है। छोटे बच्चों को अपनी मातृभाषा में अभिव्यक्ति की पूरी छूट देती हूँ। सीखने के प्रतिफलों, यानी लर्निंग आउटकम्स को आधार तो मानती हूँ लेकिन एक मात्र सीमा नहीं, बच्चे इनके इतर और इनसे आगे भी काफ़ी कुछ सीखने की क्षमता भी रखते हैं और सीखते भी हैं। मेरा मानना है कि उनकी इस क्षमता को बेहतर और विस्तृत होने देना चाहिए।

दीपक : बच्चों के साथ आपने लम्बे समय तक काम किया है। उनकी सीखने-सिखाने की प्रक्रियाओं में शामिल रही हैं। इस दौरान के अपने कुछ अनुभव भी बताएँ; ख़ासतौर पर कुछ ऐसे जब आपको लगा हो कि आप भी बच्चों से कुछ सीख रही हैं?

मीनाक्षी : बच्चों के साथ कार्य करने के अनुभव विविधता लिए होते हैं। बच्चे ख़ुद सिखा देते हैं कि उन्हें कैसे सिखाया जा सकता है और उनसे कैसा व्यवहार किया जाना चाहिए। नियुक्ति के बाद शुरुआत में मिला अनुभव अद्भुत है। कक्षा 4 की एक छात्रा को गृह कार्य न करने पर डाँटा तो उसने मुझे अपने पिता से पिटवाने की धमकी दे डाली। ग़ुस्सा तुरन्त काफ़ूर हो गया। मैंने उससे कहा, जा बुला ला। वह दूसरे दिन नहीं आई। उसके अगले दिन आने पर मैंने उसे फिर कहा कि मैं तेरे पिता का इन्तज़ार कर रही हूँ। वह मेरी पिटाई करने कब आएँगे। यह क्रम 10-15 दिन चलता रहा। छात्रा पहले से ज़्यादा नरम एवं मेहनती हो गई थी। हालाँकि बाद में मुझे लगा कि शायद कोई और तरीक़ा भी हो सकता था इस प्रकरण को 'डील' करने का जिसमें परिणाम तो अच्छे आते लेकिन बच्ची रोज़-रोज़ की मेरी वाचिक प्रताड़ना से बच जाती!

मेरी नियुक्ति कुछ वर्षों तक एक दुर्गम स्थान पर रही। वहाँ के विद्यार्थियों की मेहनत, लगन एवं शिक्षकों के प्रति सम्मान की भावना ने मुझे बहुत कुछ सिखाया। एक मर्तबा जब विद्यालय का सारा भार मुझ अकेली पर आ गया तो कुछ झल्लाहट भी हुई और कुछ ग़ुस्सा भी बढ़ा। मुझे लगने लगा कि इससे मेरा काम, मेरी सोच और मेरा व्यक्तित्व प्रभावित होने लगा था और व्यवहार में बदलाव आया; बच्चों के प्रति भी और घर के लोगों के प्रति भी।

इसी बीच हुआ यह कि एक विद्यार्थी ने एक दिन आकर मुझसे कहा कि वह अब स्कूल नहीं आएगा क्योंकि यह स्कूल अब पहले जैसा नहीं रहा। तो मुझे काफ़ी अफसोस हुआ और आत्म-विवेचन एवं आत्म-मन्थन की आवश्यकता महसूस हुई। इस घटना के बाद से मैं सभी विद्यार्थियों पर व्यक्तिशः ध्यान देने लगी। विद्यालय के अन्य कार्यों के बोझ की झल्लाहट अब बच्चों पर नहीं उतारती।

दीपक : कम्युनिटी के साथ आपके अनुभव कैसे रहे, इस कोविड काल में और इसके पहले या बाद में भी?

मीनाक्षी : समाज के साथ भी कई अनुभव अपने-आप में विश्लेषणात्मक रहे हैं। जैसा कि मैंने पहले बताया, इस विद्यालय में नियुक्ति के समय विद्यालय का नामांकन शून्य था। उसका एक मात्र कारण सरकारी विद्यालयों से समाज का मोहभंग होना था। खाए, पिए, अघाए

परिवारों से आशा करना कठिन था कि वह मेरे कहने पर अपने बच्चों का दाख़िला इस विद्यालय में करवाएँगे। जैसे-तैसे विद्यालय से लगभग 2 किलोमीटर दूर स्थित कच्ची बस्ती पर ध्यान केन्द्रित किया। वहाँ से विद्यार्थियों को एक प्रकार से आयात ही किया गया। इसके बाद जब हाउसहोल्ड सर्वे के दौरान लोगों से मिलने का मौक़ा मिला तो यह रुझान आया कि हम अपने बच्चों को विद्यालय नहीं भेज सकते क्योंकि निम्न जातियों एवं कच्ची बस्ती के बच्चे विद्यालय में पढ़ते हैं। मैंने उनसे कहा कि जात-पात सिर्फ़ मनुष्य के लिए होती है। जब आप गाय या अन्य मवेशी ख़रीदते हो तो वह किस जात के घर से आई है यह बात किसी महत्त्व की नहीं होती। एक कुत्ते से आप इतना अच्छा बर्ताव कर सकते हो कि उसे गोद में उठा लेते हो, अपने बिस्तर पर बैठा लेते हो और किसी मनुष्य के बच्चे से ऐसा दुर्व्यवहार मुझे कतई स्वीकार्य नहीं है; चाहे आप अपने बच्चे का दाख़िला मेरे विद्यालय में करवाओ या नहीं। कोरोना काल ने इस जात-पात की खाई को काफ़ी हद तक पाट दिया। और अब विद्यालय में हर कम्युनिटी के बच्चे साथ-साथ सहकार एवं प्यार से पढ़ते हैं।

एक और अनुभव बड़ा विशेष रहा, एक अनुसूचित जाति की बच्ची हिचकते हुए मेरे पास दाख़िले के लिए आई। वह अपनी मानसिक विकलांग छोटी बहन की देखरेख करने की वजह से अध्ययन जारी नहीं रख पाई थी। मैंने दोनों बहनों का दाख़िला विद्यालय में कर लिया ताकि वह अपना अध्ययन जारी रख सके एवं उसकी छोटी बहन समाज से एवं समाज उससे अच्छी तरह व्यवहार करना सीखे। उनकी पहचान भी समाज से छुपाकर रखी गई ताकि वे दोनों किसी कटु अनुभव की शिकार न हों। उन्हें मैं अपने वाहन से ही विद्यालय ले जाती। इस कार्य में मेरे तात्कालिक स्टाफ ने भी मेरा सहयोग किया, यह बात भी बहुत अहम है। विकलांग बच्चों को विद्यालय से जोड़ने पर भी कई सवाल उठाए गए। मेरा हमेशा एक ही जवाब रहा कि इन बच्चों के लिए विद्यालय तो अलग हो सकते हैं, पर समाज अलग नहीं हो सकता है। इनको इसी समाज की एवं समाज को इन लोगों के साथ रहने व अच्छे व्यवहार की आदत होनी चाहिए। मुझे एक चीज़ हमेशा लगती है कि इन लोगों से व्यवहार करने के लिए हमारे समाज को और अधिक शिक्षित एवं संवेदनशील होने की आवश्यकता है।

दीपक : कोविड-19 के कारण अधिगम ह्रास और उसे फिर से हासिल करने के सरकारी व ग़ैर-सरकारी प्रयासों को कैसे देखती हैं?

मीनाक्षी : जब संसार के अधिकतर देशों की गति रुक गई, लोग घरों में क़ैद हो गए, मशीनें रुक गईं, काम-धन्धा, वाहन, निर्माण-विनिर्माण कार्य सभी रुक गए तब यह कैसे सम्भव था कि स्कूल-कॉलेज चालू रहते! लगातार 18 महीनों तक विद्यार्थी अपने घरों में क़ैद थे। वे न अध्ययन जारी रख सकते थे न ही शारीरिक श्रम वाले खेल, खेल सकते थे। और इस तरह शुरुआत हुई एक नई चुनौती की जिसे हम 'अधिगम ह्रास' या 'लॉस ऑफ़ लर्निंग' कह सकते हैं। एक-दो माह में यह संकट टल जाता तो कोई विशेष हानि नहीं होती, मगर दो सत्रों तक विद्यालय नहीं जा पाना गम्भीर चुनौती थी। पहली कक्षा का विद्यार्थी सीधे तीसरी कक्षा में पहुँच गया और तीसरी का पाँचवीं कक्षा में। बोर्ड परीक्षाएँ स्थगित करनी पड़ीं एवं अन्य विकल्प खोजे गए। इस दौरान शिक्षा प्रक्रिया एवं ऑफ़लाइन

अध्ययन की अपर्याप्तता पर मन्थन करने की आवश्यकता अनुभव की गई। राज्य सरकार ने पहल करते हुए ऑनलाइन शिक्षा के द्वार खोले। हालाँकि शिक्षा का यह माध्यम नया नहीं था। कई बड़े शिक्षा संस्थान इसका उपयोग कर रहे थे, लेकिन आम जनता के लिए यह माध्यम नया एवं ख़ास था। इसके तहत राज्य सरकार ने सरकारी विद्यालय में पढ़ रहे विद्यार्थियों के लिए स्माइल 1, स्माइल 2, स्माइल 3, शिक्षा वाणी, शिक्षा दर्शन, साप्ताहिक क्विज़ एवं हवा महल जैसे ऑनलाइन अध्ययन कार्यक्रम चलाए। इन कार्यक्रमों के माध्यम से विद्यार्थियों के अध्ययन

को तो गति प्राप्त हुई ही, शिक्षक-शिक्षार्थी संवाद भी स्थापित हुआ। परन्तु इन योजनाओं की भी कुछ सीमाएँ रहीं। जैसे–

1. सभी तक इनकी पहुँच सुनिश्चित न हो पाना;

2. निगरानी का अभाव;

3. विद्यालयी वातावरण का अभाव;

4. दोहरान न हो पाना;

5. नेटवर्क की समस्या;

6. अध्यापन की गति तीव्र होना; एवं

7. संवाद की कमी होना।

इसमें कोई दो राय नहीं कि इन तमाम कमियों के बावजूद ऑनलाइन माध्यम ने अध्ययन हेतु नया प्लेटफॉर्म उपलब्ध करवाया। इसके साथ ही राज्य सरकार ने सभी विद्यार्थियों के लिए कार्य पुस्तिकाएँ भी उपलब्ध करवाईं जिनसे विद्यार्थी क्रमिक रूप से आगे बढ़ पाए।

दीपक : लर्निंग लॉस को कम करने एवं रिकवर करने हेतु विद्यालय स्तर पर आपने क्या किया? कुछ ख़ास बिन्दु हों तो उन्हें भी थोड़ा विस्तार से रखें।

मीनाक्षी : लगभग 3 महीनों के अवकाश के बाद विद्यालय विद्यार्थियों के लिए न सही, पर शिक्षकों के लिए तो खुल ही गए थे। मेरा विद्यालय भी खुला। ऑनलाइन माध्यम की मॉनिटरिंग करते वक़्त संज्ञान में आया कि अधिकतर विद्यार्थियों के पास एंड्रॉयड फ़ोन नहीं हैं, हैं तो भी रोज़गार संकट के कारण रिचार्ज नहीं हैं, यदि यह दोनों समस्याएँ नहीं हैं तो भी बच्चों तक इनकी पहुँच न के बराबर है। इन समस्याओं को ध्यान में रखते हुए मैंने अभिभावकों की पूर्व सहमति से अल्पकाल के लिए छोटे-छोटे समूह में सप्ताह में 2-2 दिन क्रमिक रूप से विद्यार्थियों को बुलवाना शुरू किया। इस दौरान शारीरिक दूरी एवं सैनिटाइजेशन का ध्यान रखते हुए स्वयं एवं अपने मोबाइल के द्वारा अध्यापन करवाया जाना सुनिश्चित किया गया। इसमें कोई अधिक परेशानी नहीं आई क्योंकि विद्यार्थी स्वयं सीखना चाहते थे। सीखने का समय कम मिलने के कारण वे स्वयं तैयार रहते थे। घर पर आने वाली पढ़ाई सम्बन्धी समस्याओं को वे स्वयं अंडरलाइन करके लाते एवं उनका समाधान प्राप्त करते।

उस समय तक मेरे विद्यालय के सभी विद्यार्थी विद्यालय से लगभग 2 किलोमीटर दूर एक छोटी कच्ची बस्ती से आते थे। आसपास

की बस्ती के बच्चे निजी विद्यालयों में पढ़ते थे। मेरे विद्यार्थियों को विद्यालय से ऑनलाइन एवं ऑफ़लाइन शिक्षा का लाभ प्राप्त करते देख आसपास के बच्चों में भी विद्यालय आने की लगन जाग उठी। इसके दो कारण प्रमुख थे, एक तो वे अकेलापन महसूस कर रहे थे और दूसरा, उनके विद्यालयों ने ऑनलाइन अध्ययन हेतु कोई वैकल्पिक व्यवस्था नहीं की थी। यह बच्चे अपने अभिभावकों के साथ हमारे विद्यालय आने लगे। मैंने अपने स्तर पर उनकी शिक्षा का भी उचित प्रबन्ध करने का एक सफल प्रयास किया। इससे उनके मन में सरकारी व्यवस्थाओं के प्रति विश्वास पैदा हुआ और निजी विद्यालयों का आकर्षण कुछ कम।

कोविड काल ने मेरे विद्यालय, और मेरे ही क्यों, तमाम सरकारी विद्यालयों को कम्युनिटी में एक अलग प्रतिष्ठा दी, विस्तार दिया है। इस दौरान निजी विद्यालयों की मनमर्ज़ियों से तंग आकर अभिभावकों ने सरकारी विद्यालयों का रुख़ किया। इनमें लगातार नामांकन बढ़ने लगा। मेरा विद्यालय भी इसका अपवाद नहीं रहा। सबकुछ बन्द था, पूरी दुनिया बन्द थी तब भी सरकारी शिक्षक लोगों के बीच उनकी शिक्षा और चिकित्सा सम्बन्धी ज़रूरतों को लेकर मौजूद थे। तो यह विश्वास संजीवनी रहा और इससे मेरे प्रयास को भी एक विश्वास प्राप्त हुआ।

मेरी बेटी, जो स्नातक प्रथम वर्ष की छात्रा थी, उसकी भी छुट्टियाँ थीं। उसके कलाप्रेम व चित्रकारी की कला से लाभ प्राप्त करने की चाह में हम माँ-बेटी ने मिलकर विद्यालय को महज़ एक महीने में तमाम तरह की प्रिंट रिच सामग्रियों से भर दिया, कक्षा की दीवारों को कुछ स्थाई रूप से पेंट किया तो कुछ डिस्प्ले बोर्ड जैसा रखा जहाँ बच्चे पाठ आधारित प्रिंट रिच सामग्री डिस्प्ले कर सकते थे। कुछ हम भी बनाते हैं कुछ बच्चे भी। इसका लाभ मुझे अध्यापन में एवं विद्यार्थियों को अध्ययन में आज भी मिलता है।

इस समयावधि में अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन द्वारा करवाई गई कार्यशालाओं से भी हमें काफ़ी सहयोग मिला। इनके ज़रिए कई ऐसे सुझाव निकलकर सामने आए जो कोविड काल में हुए अधिगम ह्रास की क्षतिपूर्ति हेतु बड़े ही कारगर साबित हो सकते थे। इनमें से कुछ का प्रयोग मैंने अपने विद्यालय में लॉस ऑफ़ लर्निंग की रिकवरी के लिए किया भी और अपेक्षित परिणाम भी मिले।

इसके साथ ही अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन के साथियों ने भी समय-समय पर विद्यालय का सहयोग किया। उनके द्वारा उपलब्ध कराई गई पुस्तकों से रीडिंग कॉर्नर का निर्माण किया गया। इससे विद्यार्थियों में पढ़ने की परम्परा विकसित हुई। इन किताबों के ज़रिए विद्यार्थी अपने स्तरानुकूल अध्ययन करने लगे। वे इन किताबों को उलट-पलट कर देख सकते थे, पढ़ सकते थे या घर ले जाकर अपने परिजनों के साथ अध्ययन कर सकते थे। इससे विद्यार्थियों में आ रहे रीडिंग गैप को पाटने में बहुत सहायता मिली। जिन बच्चों को भाषा सम्बन्धी दिक़्क़तें आ रही थीं, अक्षर और शब्द सही तरीक़े से न पहचान पा रहे थे न ही बोल पा रहे थे, उन्होंने भी इन किताबों की सोहबत में ख़ुद में सुधार किया है।

अनुभव होती है। मेरे स्कूल के, फ़ाउण्डेशन के साथियों ने मुझे यह अनुभव कराया जिससे कुछ और अधिक अच्छा करने की लगन निरन्तर बढ़ती गई।

शुरू में तो नहीं, लेकिन बाद में जब भी मैं कम्युनिटी के लोगों के बीच गई, उनका भी काफ़ी सहयोग मिला। एक हक़ीक़त यह भी है कि मैं उनके बीच तमाम सरकारी योजनाओं को लेकर जाती रही हूँ और इससे आसपास के लोगों में सरकारी विद्यालयों के प्रति विश्वास जागृत हुआ। ये ही वे लोग थे जो कभी सरकारी विद्यालय के अन्दर आना तक पसन्द नहीं करते थे। आज वे ख़ुशी-ख़ुशी मेरे साथ विद्यालय के विकास में सहायता प्रदान करते हैं, बच्चों की शिक्षा और विद्यालय की ज़रूरतों को लेकर भी जागरूक हैं। इस तरह विद्यालय एवं समुदाय के मध्य एक दृढ़ सम्बन्ध स्थापित हुआ है।

समय-समय पर हमने बच्चों को वर्कशीट उपलब्ध करवाईं जिन्हें उन्होंने अपने स्तर पर हल किया। इस कार्य से मुझे ज्ञात भी हुआ कि अध्ययन में कहाँ कमी रह गई है। इस गतिविधि से विद्यार्थियों की कठिनाइयों को समझना एवं उनके अनुसार अध्यापन हेतु नई रणनीतियाँ बनाना सहज-सुगम हुआ। टीएलएम को किस प्रकार उपयोग में लेना है और उसपर काम कैसे करना है, यह समझ बनी तो मेरा काम आसान हो पाया। फिर मैंने भी अपने हिसाब से बच्चों के स्तर और लर्निंग आउटकम्स के हिसाब से कई और वर्कशीटें बनाईं एवं काम में लीं, चाहे वह हिन्दी की हों, गणित या अँग्रेज़ी की।

बेसलाइन मूल्यांकन तो मैंने किया ही और उससे बच्चों का स्तर जानने में मदद भी मिली। उनका समूहन भी हुआ लेकिन यह बात आमतौर पर दिखी कि किसी-न-किसी प्रकार से जो बच्चे अपने शिक्षक या स्कूल के सम्पर्क में रहे वे अपेक्षाकृत बेहतर रहे।

समय-समय पर फ़ाउण्डेशन के साथियों द्वारा बनाई गई टीएलएम भी विद्यालय में उपलब्ध करवाई गई थी और कुछ हम लोगों ने स्कूल में भी बनाई जिससे अध्ययन-अध्यापन में काफ़ी सुविधा प्राप्त हुई। जब काम में सहयोग मिलता है तो व्यक्ति को अपने प्रयास की सार्थकता भी

दीपक : शिक्षा के क्षेत्र में क्या और बेहतर किया जा सकता है? क्या बेहतर हो रहा है?

मीनाक्षी : मेरी समझ के अनुसार शिक्षा का अर्थ सुसभ्य और सुसंस्कृत बनने की प्रक्रिया से है। साक्षर होना तो एक शुरुआती प्रक्रिया है। शिक्षा तो दरअसल हमें एक बेहतर मनुष्य बनाती है, अच्छे और बुरे के बीच अन्तर कर सकने की समझ देती है। यह हमारी पहली ज़रूरत है। जिस प्रकार भूखे पेट के लिए भोजन के रूप में रोटी पहली प्राथमिकता है और सब्ज़ी, फल या मिठाई जैसी कुछ ग़ैर-ज़रूरी खाद्य वस्तुएँ द्वितीयक जिनके बिना भी काम चल सकता है। बाक़ी चीज़ें बाद में आती हैं पर शिक्षा सबसे पहले।

शिक्षा के द्वारा विद्यार्थियों को सभ्य-सुसंस्कृत बनाने के साथ किसी रोज़गार योग्य बनाना सबसे ज़रूरी है। दूसरा, शिक्षा का माध्यम मातृभाषा ही होना चाहिए अन्य भाषा का अध्ययन विद्यार्थी की इच्छानुसार हो। शिक्षा विद्यार्थी को परिश्रमी, साहसी, मृदु, जागरूक एवं इमोशनली इंटेलिजेंट बनाए, यह बहुत आवश्यक है। *नई शिक्षा नीति* से इनमें से कई कठिनाइयों से निजात मिल सकेगी, ऐसा मुझे लगता है। विद्यार्थियों को कला, योग एवं आउटडोर खेलों से जोड़ना उनमें कई तरह की क्षमताओं का संवर्धन कर सकता है।

दीपक : स्कूल खुलेंगे तो क्या योजना है आपकी, कि बच्चों के साथ अब कैसे काम करना है?

मीनाक्षी : भविष्य में भी कक्षावार एसेंशियल लर्निंग आउटकम चिह्नित करते हुए उनके स्तरानुसार जो समूह बनाए गए हैं, योजना भी उसी हिसाब से बनाई गई है। तदनुरूप आगे बढ़ते हुए काम करने की योजना है। छुट्टियों के बाद जब स्कूल खुलेंगे तो हम अपनी योजना को लेकर आगे बढ़ रहे होंगे और उम्मीद करते है कि लर्निंग लॉस की भरपाई करते हुए हम तमाम बच्चों को उनके कक्षा स्तर तक ला पाएँगे।

मीनाक्षी गौड़ 20 वर्षों से शिक्षण कार्य से जुड़ी हुई हैं। आप जयपुर के ब्लॉक सांगानेर ग्रामीण में प्राथमिक विद्यालय आडवाणी की ढाणी में कार्यरत हैं। आपने एकल शिक्षक वाली प्राथमिक कक्षाओं में भाषा और गणित शिक्षण में सराहनीय कार्य किया है। साथ ही विद्यालय में प्रिंट रिच वातावरण और रीडिंग कार्नर के माध्यम से बच्चों के बीच सार्थक गतिविधियाँ आयोजित करती हैं। लिखना-पढ़ना इनकी अभिरुचि है और वे लगातार इन गतिविधियों से जुड़कर अपने को भी एवं अपने भीतर के शिक्षक को भी बेहतर करती रहती हैं।

सम्पर्क : meenakshigour47@gmail.com

दीपक कुमार राय अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, जयपुर, राजस्थान में 2019 से रिसोर्स पर्सन के रूप में काम कर रहे हैं। आप इलाहाबाद विश्वविद्यालय से स्नातकोत्तर, और डीफिल डिग्री लेने के बाद उच्च शिक्षा में प्राध्यापक के रूप में अध्ययन-अध्यापन से जुड़े रहे। आपने दिगंतर में एसोसियेट फेलो के रूप में शैक्षणिक शोध से जुड़ी गतिविधियों में भागीदारी की है। आपकी इतिहास, साहित्य, विचार और वैचारिकी पर केन्द्रित लगभग एक दर्जन पुस्तकें प्रकाशित हैं। आपने बिहार प्रगतिशील लेखक संघ की पत्रिका *रोशनाई*, साप्ताहिक समाचार पत्र *गणादेश*, *प्रतिश्रुति*, *आवाज जन मन की*, *संयतिया* आदि पत्रिकाओं के सम्पादन सहित *सैद्धान्तिकी* और *मतादर्श* दो शोध पत्रिकाओं का भी सम्पादन किया है।

सम्पर्क : deepak.rai@azimpremjifoundation.org

लम्बे अन्तराल के बाद स्कूलों का खुलना, चुनौतियाँ और आगे की दिशा

पाठशाला संवाद श्रृंखला की यह दसवीं परिचर्चा है। संवाद का विषय है 'लम्बे अन्तराल के बाद स्कूलों का खुलना, चुनौतियाँ और आगे की दिशा।' इस संवाद में सरोजनी रावत, नरेंद्रनगर, खारसोत विद्यालय, टिहरी गढवाल; मीनाक्षी, शिक्षक राजकीय प्राथमिक विद्यालय महाराया रुद्रपुर, उत्तराखंड; सरिता, प्राथमिक विद्यालय सद्दू, रायपुर छत्तीसगढ़; ममता, शासकीय प्राथमिक विद्यालय, धर्मनगर रायपुर; जगमोहन सिंह कठैत, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, श्रीनगर, उत्तराखंड; सुनील शाह, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, रायपुर और रजनी द्विवेदी ने अपने विचार साझा किए हैं। सं.

जगमोहन : आज के वेबिनार का सन्दर्भ एक लम्बे अन्तराल के बाद स्कूलों का खुलना, चुनौतियाँ और आगे की दिशा है। स्कूलों के बन्द रहने से बच्चों का लर्निंग लॉस तो हुआ ही है साथ ही बच्चों पर मनोवैज्ञानिक असर भी हुआ है जिससे उनके व्यक्तित्व पर बुरा प्रभाव पड़ा है। वहीं कुछ लोगों का मानना है कि लर्निंग लॉस तो हुआ है लेकिन कुछ अच्छे असर भी हुए हैं, जैसे– बच्चे बहुत मस्त रहे, कोई डर-भय नहीं रहा, और यह भी कि जो बच्चे ऑनलाइन पढ़ाई करते रहे उन्हें सीखने में कोई नुक़सान नहीं हुआ है। इसमें गाँवों और शहरों की स्थितियों में भी फ़र्क़ रहा।

आज की चर्चा का एक मक़सद स्कूल खुलने के बाद शिक्षकों के अनुभवों को सुनना और इस ज़मीनी हक़ीक़त को समझना है कि लर्निंग लॉस किस-किस क्षेत्र में हुआ है एवं उसके मायने क्या हैं। और विद्यालयों में होने वाली छुट्टियों के बाद जब बच्चे वापस आते हैं, और इस बार जो लम्बे समय के बाद वापस आए हैं, इन दोनों अन्तरालों में क्या फ़र्क़ है? तीसरा मुख्य मक़सद यह समझना है कि इस दौरान हुए लर्निंग लॉस को पाटने के लिए क्या किया जा सकता है? पहला सवाल आमंत्रित सभी शिक्षिकाओं से है– बच्चे लगभग दो साल से विद्यालय नहीं आ रहे थे और अब विद्यालय खुले हैं। आप बच्चों से मिलीं तो स्कूल में, कक्षा में उनसे मिलने, सीखने-सिखाने के आपके क्या अनुभव रहे? बच्चों की और आपकी क्या चुनौतियाँ रहीं? पहले मैं सरोजनी को आमंत्रित करता हूँ।

सरोजनी : नमस्ते। बच्चे जब विद्यालय आए तो उनके चेहरे पर चमक थी, उमंग थी। स्कूल बन्द रहने के दौरान बच्चे फ़ोन पर पूछते थे कि मैडम स्कूल कब खुलेंगे, हमें स्कूल की बहुत याद आती है। जब उनको ऑनलाइन काम देते या बात करते थे तब भी वे बताते कि वे बेसब्री से स्कूल खुलने का इन्तज़ार कर रहे हैं। बच्चों के मन में उत्साह था, यह निश्चित रूप से कह सकती हूँ। चुनौतियों की बात करूँ तो स्कूल के कुछ नियम-क़ायदे होते हैं, व्यवस्था व अनुशासन होता है, कक्षा व्यवस्था बनाए रखना, समय पर आना, स्वच्छ रहना, आदि बच्चे भूल गए थे। मसलन, पहले दिन की बात है। जब बच्चे आए, मैं कक्षा 5 में थी। उनमें से एक बच्चे को देखा कि उसकी शर्ट के ऊपर के दो-तीन

बटन खुले हुए थे। कई बच्चों का बोलने का तरीक़ा बदल गया था, जब बोल रहे थे तो लग रहा था कि शालीनता बच्चों की भाषा से निकल चुकी थी और उनके बाल भी बहुत बढ़े हुए थे।

इस दौरान बच्चे इन कामों में भी लगे रहे। वैसे बच्चे पहले भी ऐसा करते थे लेकिन विद्यालय आने की नियमितता और इन सन्दर्भों में संवाद होते रहने से वे समझते थे कि विद्यालय कैसे आना है, बातचीत का तरीक़ा कैसा होना चाहिए, इस लम्बे अन्तराल में यह नहीं हो पाया। हमने पाया कि सुबह की सभा, प्रार्थना कैसे होनी चाहिए, क्या प्रार्थनाएँ थीं, यह सब भी बच्चे भूल चुके थे।

एक सकारात्मक पक्ष यह था कि बच्चे अपने-आप को अभिव्यक्त करने लगे थे। मेरे सवाल पर, कि कोविड के दौरान घर में क्या परिस्थितियाँ थीं, क्या कोई परेशानियाँ आईं, किन लोगों ने मदद की, सभी बच्चों ने अपने अनुभव सुनाए। उन्होंने बताया कि बहुत सारी स्वयंसेवी संस्थाओं से मदद मिली, जिनके सदस्य हमारे घर खाना देने आते थे। कुछ बच्चों ने बताया कि हमारे काम छूट गए, तो कुछ ने कहा कि हम अपने अभिभावकों के साथ काम पर जाने लगे।

चित्र : पुरुषोत्तम सिंह ठाकुर

लेकिन लर्निंग लॉस हुआ है। इन डेढ़ सालों में उनके साथ लिखने का अभ्यास बिलकुल नहीं हुआ और इस वजह से उन्हें लिखने में बहुत परेशानी हुई। यहाँ तक कि श्यामपट्ट से देखकर लिखने में भी बच्चे बहुत वक़्त लगाने लगे। पहले वे जो पाँच या दस मिनट में देखकर लिख लेते थे, उसी को लिखने में उन्हें अब आधा घण्टा चाहिए था। तिस पर अक्षरों, शब्दों की बनावट बिलकुल बिगड़ चुकी थी, लिखने में जगह की समझ भी नहीं रही थी। जैसे– मैंने ब्लैकबोर्ड पर एक पंक्ति लिखी, उसी वाक्य के बाक़ी हिस्से को आगे लिखने के लिए पंक्ति में जगह नहीं बची तो उसे अगली पंक्ति में लिखा। बच्चों ने अपनी कॉपी में उसे वैसे ही लिखा, भले ही उनकी कॉपी की पंक्ति में आगे लिखने की जगह हो।

दूसरा, जो बच्चे लॉकडाउन से पहले कक्षा 3 में थे, वे अब कक्षा 5 में आ गए। कक्षा 5 का भी आधा सत्र निकल चुका था क्योंकि स्कूल सितम्बर से शुरू हुए। कक्षा 3 और कक्षा 5 के गणित, भाषा और पर्यावरण में काफ़ी फ़र्क़ होता है। कक्षा 3 में बच्चा पढ़ने-लिखने की समझ विकसित कर रहा होता है। कक्षा 3 व 4 में इसपर कुछ ख़ास काम नहीं हो पाया, इसलिए न तो बुनियाद ढंग से बन पाई, न ही उसकी मज़बूती पर काम हुआ।

कहने का तात्पर्य यह है कि अभिव्यक्ति तो आई, लेकिन लिखित अभिव्यक्ति नहीं आ पाई।

बच्चे अब कुछ अनियमित भी हो गए हैं क्योंकि कोविड के दौरान उन्होंने माता-पिता के साथ काम करना शुरू कर दिया है। माता-पिता की बच्चों से अपने कामों में मदद लेने की आदत बन गई है। पहले प्राथमिक कक्षाओं के बच्चे काफ़ी नियमित थे, अभिभावक बच्चों को किसी मज़दूरी के काम में नहीं लगाते थे, लेकिन कोविड में जब मजबूरी में बच्चों को लगाया और पाया कि बच्चे अच्छे से सँभाल पा रहे हैं तो स्कूल खुलने के बाद भी वे उन्हें अपने साथ ले जाने लगे।

जगमोहन : धन्यवाद, सरोजनी। सरिता, आप अपनी बात रखें।

सरिता : नमस्कार। हमारा स्कूल 2 अगस्त, 2021 से खुला। कुल 125 बच्चे थे और 50 फ़ीसदी बच्चों को ही बुलाना था। सबसे पहली चुनौती थी, कोरोना गाइडलाइन का पालन करना। स्वच्छता के बारे में तो वे जागरूक थे, अतः बार-बार हाथ धोना, इधर-उधर न छूना, ये सब अच्छे से करते थे। लेकिन भौतिक दूरी बनाए रखना एक बड़ी चुनौती थी। बच्चे साथ-साथ बैठ जाते थे। मास्क लगाने के लिए भी बार-बार बोलना पड़ता था। मैं कक्षा 2 को पढ़ाती हूँ। हमारा स्कूल 12 मार्च, 2020 से बन्द हुआ, उस वक़्त हम कक्षा दूसरी में पढ़ना-लिखना सीख ही रहे थे। कुछ समय बाद हमने बच्चों से ऑनलाइन जुड़ने का प्रयास किया, व्हाट्सएप समूह भी बनाया। इस बीच मध्याह्न भोजन का राशन देने जाते और मैं पालकों से बात करती थी कि बच्चे ऑनलाइन कैसे जुड़ सकते हैं, उन्हें क्या एप डाउनलोड करने होंगे। लेकिन वे नाराज़ होते थे कि पहले ही इतनी परेशानियाँ हैं और फिर कई वजहों से स्मार्टफ़ोन बच्चों को देने की बात भी उनको बिलकुल पसन्द नहीं आती थी। ख़ैर, ऑनलाइन कक्षाएँ हुईं लेकिन उनका कुछ ख़ास फ़ायदा बच्चों को नहीं मिल पाया। ऑफ़लाइन कक्षा का कोई और विकल्प हो ही नहीं सकता था। जब बच्चे वर्ष 2021 में स्कूल आए तो वे कक्षा 4 में थे लेकिन उनका शैक्षिक स्तर दूसरी का ही लग रहा था, और कई तो उससे भी पीछे थे। मेरे पास स्कूल में 125 बच्चे थे उनमें से 27-28 बच्चों के पालकों से मैं सम्पर्क ही नहीं कर पाई। सम्भवतया वो पलायन कर गए थे। 25-26 बच्चे बिलकुल शुरुआती स्तर के थे। जो कुछ भी वो सीखे थे, भूल चुके थे। कुछ 36-37 बच्चे ऐसे थे जिनको कुछ आता था, मतलब कम प्रयास से ही वो सीखने लग गए थे।

जगमोहन : धन्यवाद, मैं ममता से अपने अनुभव साझा करने का आग्रह करूँगा।

ममता : स्कूल जब दोबारा शुरू हुए तो बच्चों को लगा जैसे कोई त्योहार है। बच्चे ख़ुशी-ख़ुशी आने को तैयार थे। लेकिन तब भी कुछ अभिभावक ऐसे थे जो बीमारी के डर के चलते बच्चों को स्कूल नहीं भेजना चाहते थे। मैंने उनसे कहा कि हम ध्यान रखेंगे स्कूल में बच्चे सुरक्षित रहें, मोबाइल की तुलना में स्कूल में सीखना-सिखाना बेहतर होता है। मेरे यहाँ मैं अकेली ही शिक्षिका हूँ, हालाँकि बच्चे कम हैं और स्कूल भी छोटा ही है। अधिकांश अभिभावक दिहाड़ी मज़दूरी करते हैं, माताएँ घरों में बर्तन, झाड़ू-पोंछा करने जाती हैं, और बच्चे घर में अकेले रहते हैं। ज़्यादातर बच्चों के अभिभावक पढ़े-लिखे नहीं थे, इसलिए बच्चे घर में भी कुछ नहीं कर पाते थे। इस वजह से भी बच्चों का स्कूल आना ज़रूरी था, और अभिभावकों से काफ़ी बातचीत कर मैं बच्चों को स्कूल लेकर आई।

स्कूल जब दोबारा शुरू हुए तो बच्चों को लगा जैसे कोई त्योहार है। बच्चे ख़ुशी-ख़ुशी आने को तैयार थे। लेकिन तब भी कुछ अभिभावक ऐसे थे जो बीमारी के डर के चलते बच्चों को स्कूल नहीं भेजना चाहते थे। मैंने उनसे कहा कि हम ध्यान रखेंगे स्कूल में बच्चे सुरक्षित रहें, मोबाइल की तुलना में स्कूल में सीखना-सिखाना बेहतर होता है।

मैंने भी पाया कि बच्चे काफ़ी कुछ भूल चुके थे। स्कूल बन्द हुए तब ये पहली कक्षा में थे

और अब तीसरी में आने वाले थे। तीसरी कक्षा के स्तर पर उनको लाना तो मुश्किल था ही, पर कक्षाओं के लिए लगातार बैठा पाना भी बड़ा मुश्किल हो रहा था। मेरे लिए यह चुनौती थी कि वो मेरी बात सुनें और पढ़ना-लिखना शुरू करें। ये बच्चे सिर्फ़ पहली पढ़कर तीसरी में आए थे। चौथी और पाँचवीं के बच्चे ज़्यादा नहीं भूले थे, तीसरी में वो काफ़ी सीख चुके थे। जितना भी वो भूले थे थोड़ा-बहुत उस बारे में बात करने पर फिर से उनको याद आ गया। मैंने बच्चों की ऐसी जोड़ियाँ बनाईं जिनमें एक कमज़ोर और एक बच्चा वह होता जिसे पढ़ना और समझना आता था। जोड़ी बनाकर एक दूसरे की मदद करने के लिए कहा और बच्चे ही अपने साथी को सिखाते थे। अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन की मदद लेते हुए इन बच्चों के लिए स्तरानुसार मैंने कई वर्कशीट भी बनाईं, जिनसे मुझे बच्चों के साथ काम करने में और बच्चों को सीखने में काफ़ी मदद मिली। बच्चों ने इन वर्कशीट को बहुत ख़ुशी-ख़ुशी स्वीकार किया और उनसे सीखने लगे। अब मेरे बच्चे अच्छी तरह पढ़ाई कर रहे हैं। लेकिन अब भी मुझे पहली और दूसरी कक्षा में बहुत समस्या हो रही है, क्योंकि मैं अकेली शिक्षिका हूँ। मैंने समुदाय और अड़ोस-पड़ोस के मोहल्ले वालों से निवेदन किया कि यदि कोई स्वेच्छा से मेरी शाला में मेरी मदद करना चाहता है तो आ सकता है। एक लड़की जो बीएड है और अभी एमए की पढ़ाई कर रही है, वह मेरी मदद कर रही है।

चित्र : पुरुषोत्तम सिंह ठाकुर

इस दौरान फ़ोन द्वारा बच्चों से मेरा जुड़ाव लगातार बना रहा। जिन बच्चों के अभिभावक जागरूक थे, जो बच्चे ख़ुद कुछ पढ़ाई कर सकते थे, वे कुछ मदद फ़ोन से ले लेते थे। कभी-कभी उनको मैं कोई दिन देती थी कि मैं इस दिन इतने बजे स्कूल में रहूँगी, कोई परेशानी हो तो अकेले अथवा पापा या मम्मी के साथ आना, मैं समझा दूँगी। मैं अकसर उन्हें पेरेंट्स के साथ बुलाती थी। लॉकडाउन के दौरान सबको तो नहीं बुला सकती थी। पर मैं स्वयं अपने साधन से जाती और अपनी ही रिस्क पर बच्चों को बुलाकर उन्हें सिखाती और इतना होमवर्क देती कि बच्चा उसको समझ सके और कर सके। पेरेंट्स को भी कहती कि अगर आपको कोई प्रॉब्लम होती है या नहीं समझ आता तो मुझे फ़ोन करिए, मैं आपकी सहायता करूँगी।

जगमोहन : शुक्रिया ममता। आप कह रही हैं कि जो बच्चे सम्पर्क में रह पाए, जिनको हम सपोर्ट कर पाए, कहीं-न-कहीं उनकी अकादमिक

कनेक्टिविटी बनी रही, जो नहीं रह पाए उनका लॉस अधिक हुआ है। इसी प्रश्न पर अब हम मीनाक्षी के अनुभव सुनते हैं।

मीनाक्षी : हमारे सामने सबसे बड़ी चुनौती थी कि स्कूल में कोरोना गाइडलाइन का पालन भी करना है, और यह सब बच्चों को सिखाना भी है। शुरुआत में हम बच्चों को ज़्यादा लम्बे समय तक स्कूल में नहीं रोक पाए। सुबह की सभा नहीं थी, कक्षा में भी दूरी रखते हुए काम करना था, यह सब मुश्किल था। शुरुआत में छोटे बच्चों से बातचीत की तो पाया कि कक्षा एक, दो, तीन के बच्चे कही गई बात को भी नहीं समझ पा रहे थे। हालाँकि कक्षा चार और पाँच के बच्चों में उत्सुकता थी कि अब हम स्कूल में

आ गए हैं। वे बहुत सारी चीज़ें करना चाहते थे, मसलन, मिलकर प्रार्थना करना, कहानी सुनना, खेलकूद, श्यामपट्ट पर लिखना, आदि। कहानी सुनाना स्कूल की दैनिक गतिविधि है और वो बच्चों को बहुत पसन्द है।

मोबाइल फ़ोन से जुड़ाव तो बच्चों के साथ नहीं हो पाया, लेकिन जब हम बच्चों को मिड-डे मील देने के लिए जाते थे उस समय वर्कशीट वितरण भी करते थे, इससे हमारा जुड़ाव बना रहा। दूसरा मैंने बाल पुस्तकालय की किताबें बच्चों को देना शुरू किया। मन में यह सवाल तो आया कि बच्चे किताबें ले तो जा रहे हैं पर पढ़ेंगे कैसे! लेकिन उनके बड़े भाई-बहिन जो पढ़े-लिखे थे, उन्होंने मदद की और मेरे चौथी व पाँचवीं के बच्चे जो पढ़ सकते थे, पढ़ना पसन्द करते हैं उन्होंने पढ़ने-लिखने का काम जारी रखा। इन बच्चों का तो ज़्यादा नुक़सान नहीं हुआ लेकिन कक्षा तीन में जो बच्चे आए, उनके साथ काम करना मुश्किल था। उनके साथ योजना के अनुसार काम किया है। उसपर आगे बात करेंगे। बच्चे काफ़ी कुछ भूल चुके हैं। फिर भी बच्चे निश्चित रूप से स्कूल आना चाह रहे थे, बहुत कुछ सीखना चाह रहे थे। लेकिन चैलेंज यह था कि अब उनको ज़्यादा समय तक कक्षा में कैसे रोकें और कैसे व कहाँ से उनके साथ काम की शुरुआत करें।

जगमोहन : शुक्रिया। बच्चे बहुत उत्सुक हैं, लेकिन अलग-अलग प्रकार की चुनौतियाँ हैं। कई जगह दिख रहा है, बच्चे स्कूल की संस्कृति से काफ़ी दूर हो गए हैं, उन्हें उस कल्चर में वापस कैसे रँगेंगे?

मैं सुनीलजी को आमंत्रित करूँगा। उनसे सवाल है कि लर्निंग लॉस व लर्निंग गैप पहले भी होता था, पर अभी जो लर्निंग लॉस व गैप की बात हो रही है वो किस मायने में भिन्न है?

सुनील : इस लॉस को हम कई तरीक़े से समझ सकते हैं। लर्निंग लॉस व लर्निंग गैप पहले भी था लेकिन उसमें और अभी जो हुआ है इन दोनों में काफ़ी भिन्नता है। पहले जो लर्निंग लॉस होता था, वो विद्यालय में कुछ बच्चों का कुछ समय के लिए अनुपस्थित रहना, किसी विषय-वस्तु पर समझ नहीं बन पाना, उसमें पीछे रह जाना, इस तरह का था। पहले इस तरह के उदाहरण मिलते थे। लेकिन अभी का रेंज काफ़ी व्यापक है। अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन द्वारा किया गया अध्ययन दर्शाता है कि महामारी की वजह से बच्चों का लगभग 80 से 90 प्रतिशत लर्निंग लॉस हुआ है। हमारे ख़ुद के विद्यालय अवलोकन भी दर्शाते हैं कि जो बच्चे कक्षा दो या तीन में थे अभी वो कक्षा पाँच में आए हैं, लेकिन लिखने-पढ़ने की जो उनकी क्षमता थी उस क्षमता से वे काफ़ी पीछे चले गए हैं।

अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन द्वारा किया गया अध्ययन दर्शाता है कि महामारी की वजह से बच्चों का लगभग 80 से 90 प्रतिशत लर्निंग लॉस हुआ है। हमारे ख़ुद के विद्यालय अवलोकन भी दर्शाते हैं कि जो बच्चे कक्षा दो या तीन में थे अभी वो कक्षा पाँच में आए हैं, लेकिन लिखने-पढ़ने की जो उनकी क्षमता थी उस क्षमता से वे काफ़ी पीछे चले गए हैं।

इसको ऐसे भी समझ सकते हैं। अगर विद्यालय खुले होते और सबकुछ ठीक चल रहा होता तो पिछले डेढ़-दो साल माने लगभग 450-500 दिनों में जितनी पढ़ाई हो पाती, वह नहीं हो पाई। इस नुक़सान का दूसरा आयाम

है कि इन दिनों बच्चों का अन्य बच्चों के साथ जुड़ाव और सीखने-सिखाने की प्रक्रिया भी बाधित रही। सारांश में, जहाँ पहले पाँच-दस प्रतिशत बच्चे किसी कारण से सीख नहीं पाते थे अब यह दायरा बढ़कर 80-90 प्रतिशत तक आ गया है।

जगमोहन : धन्यवाद सुनीलजी। इस लर्निंग लॉस या गैप को पाटने के लिए बहुत सारे प्रयास किए गए हैं, मैं चाहूँगा आप सभी ने जो प्रयास किए उनके बारे में बताएँ। मैं आमंत्रित करता हूँ सरोजनी मैम को।

सरोजनी : मैं लर्निंग लॉस को दो तरह से देखती हूँ– एक तो विद्यालय परिसर में क़दम रखते ही मुझे ऐसी चीज़ें दिखती हैं जो बच्चे के अन्दर होनी चाहिए और नहीं हैं, तो उसे भी लॉस ही कहूँगी। मसलन, कक्षा में लगातार न बैठ पाना। विषयों की बात करें तो प्राथमिक स्तर पर सारे विषय देखने होंगे। मैंने हिन्दी, गणित और अँग्रेज़ी तीनों विषयों पर बच्चों के साथ काम किया। अभी पिछले छः महीनों से मैं कक्षा पाँच को हिन्दी पढ़ा रही हूँ तो इसी के उदाहरण दूँगी। मैंने पाया कि बच्चे बहुत अच्छी अभिव्यक्ति कर पा रहे थे, लेकिन उस अभिव्यक्ति को लिखित रूप देना बच्चों के लिए सम्भव नहीं था। मात्राओं की गड़बड़ी थी और पढ़ने की गति कम हो गई थी। जब बच्चों ने स्कूल आना शुरू किया तो उन्हें कार्य पुस्तिकाएँ हल करने को दी गईं। मैंने हर एक बच्चे की कार्य पुस्तिका का विषयवार अध्ययन किया। अध्ययन करने के बाद मैंने हर बच्चे की अभ्यास पुस्तिका के पीछे एक सूची बना ली। बच्चा किन अवधारणाओं को भूल गया है, उनमें कहाँ कमी है, किन अवधारणाओं को और किस हद तक वो समझ पा रहा है, आदि बिन्दु मैंने इस सूची में लिखे। हर बच्चे के लिए यह सूची बनाने के बाद मैंने इन बिन्दुओं को संक्षेपित किया और उनके आधार पर समझ पाई कि बच्चे निर्देशों को समझ रहे हैं, अपनी बात को अभिव्यक्त कर रहे हैं लेकिन लय के साथ न तो पढ़ पा रहे हैं न ही शुद्ध रूप से लिख पा रहे हैं। मैंने यह ज़रूरी कर दिया कि कक्षा में हर बच्चे को एक अनुच्छेद पढ़ना ही है। दूसरा काम था, रोज़ एक अनुच्छेद घर से लिखकर लाना और अगले दिन उसे कक्षा में पढ़कर सुनाना। मेरा मानना था कि इससे बच्चों का लेखन कौशल सुधरेगा और बच्चे समझकर लिखना व पढ़ना सीखेंगे। यह काम ख़ासतौर से उन बच्चों के लिए था जो बच्चे कुछ पढ़ पा रहे थे, मात्राएँ पहचान पा रहे थे लेकिन धाराप्रवाह नहीं पढ़ पा रहे थे। कुछ ऐसे थे जिनको मात्राओं की भी समझ नहीं थी। ऐसे बच्चों को पहले हफ़्ते सारी मात्राओं का दोहरान करवाया, इस काम को किताब से जोड़ने के लिए मैंने पाठ में से 'ई' और 'आ' की मात्रा वाले सारे शब्द कॉपी में लिखने जैसे टास्क दिए। मैंने पाया कि महीनेभर बाद बच्चे मात्राओं को पहचानने और पढ़ने लगे, फिर मैंने उनकी पढ़ने की गति पर काम किया। जैसा मैंने उनसे कहा, "रोज़ एक पेज पढ़ना और एक अनुच्छेद लिखकर लाना", यह क्रम मार्च तक जारी रखा।

चित्र : पुरुषोत्तम सिंह ठाकुर

मैंने संज्ञा, सर्वनाम आदि की परिभाषाएँ करवाने की बजाय दूसरा तरीक़ा अपनाया,

जैसे– अपने आसपास की चीज़ों के नाम लिखो। बच्चों से कहा कि अपने सामने की वस्तु देखो, उससे पूछो कि आपका नाम क्या है। तो यदि अजीवित बोलते तो ब्लैकबोर्ड कह सकता था, "मैं ब्लैकबोर्ड हूँ", "मैं डस्टर हूँ", "मैं चार्ट हूँ", तो जहाँ से भी ऐसा जवाब आ सकता है वो नाम वाले शब्द हैं। इन्हीं नाम वाले शब्दों को हम संज्ञा कहते हैं। ऐसे ही जब शरीर को गति करनी पड़ती है तो वे क्रिया के उदाहरण हैं, मसलन, खेलना, कूदना, हँसना, गाना, आदि। बच्चों को घर से, किताब से भी ऐसे नाम ढूँढ़ने को कहा। जब हमारे पास बहुत-से शब्दों की सूची बन जाती तब हम बात करते थे कि ये संज्ञाएँ हैं और ये क्रियाएँ।

हमारे यहाँ एनसीईआरटी की पाठ्यपुस्तकें हैं। मैंने बच्चों के साथ सभी पाठों का दोहरान किया। पाठ का मौखिक सारांश बच्चों के सामने रखा और उसपर बच्चों से संवाद किया। हर पाठ में दी गई मुख्य जानकारियों, जो बच्चों को देनी हैं, को इकट्ठा किया। जैसे– डाकिए के कहानी वाले पाठ में, पिनकोड क्या होता है, पता लिखना, क्यों लिखते हैं, आदि को इकट्ठा किया। ऐसा मैंने सारे पाठों के लिए किया और सारांश के रूप में जानकारी बच्चों के सामने रखी। गणित में मैंने अंकों की पहचान पर दोबारा काम किया। अधिकांश बच्चों को सैकड़ा या हज़ार तक की समझ थी। लेकिन अठासी या नवासी और इसी तरह की अन्य संख्याओं को देखकर चुप हो जाते हैं। इन सबका दोहरान किया। गुणा, भाग, जोड़, घटाव जैसी संक्रियाओं का भी दोहरान किया। यानी, बार-बार जोड़ने को गुणा कहते हैं। मुख्यतः बुनियादी गणितीय क्षमताओं पर मैंने काम किया।

रजनी : एक सच्चाई यह है कि बच्चे अगली कक्षा में जाएँगे और उन्हें उसके लिए तैयार करना है ही, लेकिन बच्चे भूल भी बहुत कुछ गए हैं और हम उन भूली हुई अवधारणाओं की भी पुख़्ता समझ बनाना चाहते हैं उसमें समय भी लगाना पड़ेगा, और इसलिए उन्हें पर्याप्त समय देना पड़ेगा। प्रश्न यह है कि बच्चों की किसी अवधारणा की अच्छी समझ बनिस्बत उसको दूसरी कक्षा में ले जाना, इन दोनों बीच में सन्तुलन कैसे करेंगे? मीनाक्षीजी आप से शुरू करते हैं।

> सच्चाई यह है कि बच्चे अगली क्लास में जाएँगे और उन्हें उसके लिए तैयार करना है ही, लेकिन बच्चे भूल भी बहुत कुछ गए हैं और हम उन भूली हुई अवधारणाओं की भी पुख़्ता समझ बनाना चाहते हैं उसमें समय भी लगाना पड़ेगा, और अगर हम चाहते हैं कि वे जोड़, गुणा की अवधारणा को ठीक से समझें तो उन्हें पर्याप्त समय देना पड़ेगा।

मीनाक्षी : मुझे अवधारणा पर समझ बनाना ज़्यादा ज़रूरी लगता है। अगर बच्चों की अवधारणा पर पुख़्ता समझ बन जाती है तो निश्चित रूप से आगे वह जो भी सीखेगा वो स्थाई होगा। जैसे– मैंने कक्षा एक, दो में हिन्दी भाषा में बच्चों के साथ अच्छा काम कर लिया है। बच्चे अभिव्यक्त कर पा रहे हैं– लिखित भी और मौखिक भी– उनमें जिज्ञासा है और वे पढ़ना चाह रहे हैं। ये चीज़ें बच्चे में होनी ज़्यादा ज़रूरी हैं। जब ये चीज़ें बच्चे में विकसित हो जाती हैं तो आगे बच्चा जो भी विषय पढ़ना चाह रहा है, चाहे वो गणित हो या इंग्लिश, उसमें उसका रुझान पैदा हो जाता है।

रजनी : सरिता, आप कुछ कहना चाहेंगी?

सरिता : मेरा मानना है कि बच्चा अगर एक से दस तक भी गिनती जान गया तो दस तक की गिनती से ही दो को तीन से जोड़ना,

तीन से दो को घटाना, आदि बच्चा पहली से सीख सकता है। पहली कक्षा से ही छोटी-छोटी संख्याओं से जोड़ना, घटाना, गुणा आदि सीख जाएगा तो आगे बड़ी संख्याओं के साथ ये संक्रिया करने में उसे सहूलियत होगी।

रजनी : रघुवेंद्रजी का सवाल है कि जो बच्चे अभी कक्षा 4 में हैं, वो बच्चे कक्षा 2, कक्षा 3 का भी भूल गए हैं। अब कक्षा 2 और 3 की अवधारणाओं पर बच्चों की समझ बनाने के लिए काम करना है और साथ-साथ कक्षा चार की अवधारणाओं पर भी, ये कैसे होगा?

ममता : पहले भाषा पर ज़्यादा ध्यान देना पड़ेगा। बच्चा अगर भाषा को समझने लगता है

चित्र : पुरुषोत्तम सिंह ठाकुर

तो हम गणित की अवधारणाओं को अच्छी तरह से समझा सकते हैं।

रजनी : धन्यवाद। सुनीलजी, आप इसपर अपने विचार रखें।

सुनील : मेरी समझ से इसका कोई शॉर्टकट नहीं है। जो सुझाव बाक़ी शिक्षक साथियों ने रखे हैं मेरी उनसे सहमति है। अगर बच्चा अभी कक्षा 4 में है और दो साल पहले वो कक्षा 2 के स्तर पर था, तो यह मानकर चलें कि अधिकांश बच्चे कक्षा 2 के स्तर पर ही हैं। इन बच्चों के साथ बुनियादी संख्यात्मक ज्ञान और पढ़ने-लिखने पर फ़ोकस करते हुए काम करना पड़ेगा। साथ में कुछ विषय-वस्तु कक्षा चार की भी ले सकते हैं, लेकिन ये सिर्फ़ भाषा के क्षेत्र में सम्भव है। गणित के सन्दर्भ में यह अप्रोच काम नहीं करेगी। गणित में बुनियादी स्तर से काम करना होगा। तभी आप क्रमिक रूप से कक्षा चार के स्तर की गणित की अवधारणा पर पहुँच सकते हैं।

रजनी : शुक्रिया सुनीलजी। मनोहर का एक सवाल है कि बच्चों ने अगर अवधारणाओं को रटा होगा तो भूल गए होंगे, लेकिन जो अवधारणा समझ ली होगी उसे कैसे भूल गए होंगे?

मीनाक्षी : मैं इस बात से सहमत हूँ। एक उदाहरण देना चाहूँगी। कक्षा 4 और 5 के बच्चों के साथ आरम्भिक भाषा को लेकर अच्छे से काम हुआ था इसलिए बच्चे कविताओं, कहानियों को कुछ हद तक बता पा रहे थे, माने अभिव्यक्त करने की क्षमता थी। वे शब्दों को लिख पा रहे थे। जब मैंने मोहल्ला कक्षाएँ ली थीं, उनमें छोटी-छोटी कविताओं को लेकर योजना बनाई थी। इनमें प्रश्न भी अलग-अलग तरीक़े के होते थे। कुछ प्रश्न क्या, क्यों वाले और कुछ खुली बातचीत के होते थे, साथ ही हर स्तर के बच्चे के लिए प्रश्न होते थे। वर्ण एवं मात्रा की पहचान के लिए भी प्रश्न थे और अगर बच्चे को अभिव्यक्ति का अभ्यास करना है तो उससे सम्बन्धित प्रश्न भी थे। इन कक्षाओं में हमने पढ़ना सिखाने पर भी काम किया। सिर्फ़ पाठ्यपुस्तकों की नहीं बल्कि अन्य कहानियों व कविताओं से भी मदद मिली।

रजनी : सरिताजी, आप कुछ जोड़ना चाहेंगी?

सरिता : बच्चे जो चीज़ अच्छे से समझ चुके थे वो नहीं भूले। थोड़ा-सा उनके पटल पर धूल जमने जैसी बात हुई थी, जैसे– जो बच्चे कक्षा दूसरी में अच्छा लिखने-पढ़ने लगे थे वो चौथी में आने के बाद थोड़े से प्रयास के बाद अच्छे से पढ़ने-लिखने लगे, यह ज़रूर है कि दो-ढाई माह उनके साथ लगकर काम करना पड़ा। बच्चों ने भी एक दूसरे की सीखने में मदद की। फिर मैंने कुछ वर्कशीट भी काम में लीं।

रजनी : सरोजनी जी, आप कुछ जोड़ना चाहती हैं?

सरोजनी : पहले तो हमें यह फ़ोकस करना पड़ेगा कि हम किस लॉस की बात कर रहे हैं। क्या वो पाठ्यक्रम से जुड़ा है या बच्चे ने क्या सीखा और क्या भूल गया, इसकी बात है। माने किताब नहीं पढ़ी यह एक बात है और कोई क्षमता में कमी आई, यह दूसरी बात है। जैसे— कक्षा तीन, चार और पाँच के हिन्दी भाषा के लर्निंग आउटकम को देखें तो पाते हैं कि अमूमन तीनों कक्षाओं के लर्निंग आउटकम एक से हैं। इनमें लगभग 80% समानता है, थोड़ी जो असमानता है वो यह है कि व्याकरण के तत्त्वों की समझ मसलन, संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण की अवधारणा कक्षा-दर-कक्षा थोड़ी बढ़ती जा रही थी। लेकिन भाव की अभिव्यक्ति, कहानी, कविता कहना या किसी पात्र के विषय में बात करनी है वो तीनों कक्षाओं में एक जैसा ही है। इंग्लिश में भी लर्निंग आउटकम एक जैसे ही हैं, लेकिन गणित विषय इसमें थोड़ा अलग है। गणित के सम्बोध सरल से कठिन की ओर बढ़ते हैं, इसलिए पहले फ़ाउण्डेशनल न्युमेरेसी पर काम करना पड़ेगा चाहे हम कोई भी कक्षा को पढ़ा रहे हों। हमें बच्चों को अतिरिक्त समय भी देना होगा। यह भी कि किसी एक विषय की कक्षा से समय बचेगा तो उसे गणित जैसे अन्य विषय में लगा सकती हूँ। क्योंकि गणित अवधारणाओं की समझ और अभ्यास दोनों ही माँगता है। गणित कोई प्रश्न-उत्तर जैसा नहीं कि आपने पढ़ा और बच्चे ने जवाब दे दिया। यदि आपने 3 की जगह 4 लिख दिया और 8 की जगह 9 लिख दिया तो बच्चों को लगता है कि ये अलग सवाल है। मैंने बच्चों के साथ संख्याओं की समझ, संख्याओं को शब्दों में लिखना, जोड़-बाक़ी पर एक महीने तक काम किया। एक दिन बच्चों का टेस्ट लिया तो काफ़ी हैरानी हुई, अच्छे-अच्छे बच्चों ने भी संख्याओं को शब्दों में लिखने में ग़लती की थी। मुझे महसूस हुआ कि मैंने बच्चों को समझने और अलग-अलग तरह के अभ्यास के लिए पर्याप्त समय नहीं दिया। एक-दो दिन जोड़ किया, फिर घटाव और तब गुणा, सब काफ़ी जल्दी-जल्दी किया। बच्चे ख़ुद सवाल बनाएँ, एक दूसरे को सवाल करने के लिए दें, ऐसा कुछ नहीं किया। इससे बच्चों को अभ्यास नहीं मिल पाया था, तो फिर उसके बाद मैंने बच्चों को अभ्यास करने के लिए अधिक-से-अधिक प्रश्न देने शुरू किए और अब बेहतर परिणाम आ रहा है।

बच्चे जो चीज़ अच्छे से समझ चुके थे वो नहीं भूले। थोड़ा-सा उनके पटल पर धूल जमने जैसी बात हुई थी, जैसे— जो बच्चे कक्षा दूसरी में अच्छा लिखने-पढ़ने लगे थे वो चौथी में आने के बाद थोड़े से प्रयास के बाद अच्छे से पढ़ने-लिखने लगे, यह ज़रूर है कि दो-ढाई माह उनके साथ लगकर काम करना पड़ा। मैंने एक तरीक़ा अपनाया था। ऐसे समूह बनाए जिनमें एक बच्चा बहुत बढ़िया पढ़ने वाला और उसके साथ एक दूसरी के स्तर का बच्चा होता था। ऐसे बच्चों ने भी एक दूसरे की सीखने में मदद की। फिर मैंने कुछ वर्कशीट भी काम में लीं।

रजनी : धन्यवाद सरोजनीजी। ममताजी, आप कुछ जोड़ना चाहेंगी?

ममता : तीसरी के साथ-साथ चौथी और पाँचवीं के बच्चों को दो महीने तक मैंने एक ही तरह के सवाल हल करना और गणित की संख्याओं को सिखाया, इससे उनमें समझ बनी। जब वो समझने लगे उसके बाद तीसरी के बच्चों को थोड़े आसान, चौथी के बच्चों को थोड़ा अलग और पाँचवीं के बच्चों को उससे अलग सवाल देकर काफ़ी अभ्यास कराया। अभ्यास पर मैं ज़्यादा ध्यान देती और बच्चों को कहती कि ब्लैकबोर्ड पर हल करो। बच्चे एक दूसरे का देखकर भी सीखते हैं, ब्लैकबोर्ड पर वो सवाल

करते तो मुझसे पूछते, मैं सही हूँ या ग़लत, तो मैं अभ्यास कराकर सिखाती और वही सारे प्रश्न मैं उनको होमवर्क में भी देती।

सुनील : अगर अवधारणाएँ समझ ली गई होती हैं तो आसानी से भूली नहीं जा सकतीं। लेकिन इसको इस तरीक़े से समझें कि जो बच्चा कक्षा 2 या 3 में आज से दो या तीन साल पहले था और उस समय कुछ अवधारणाओं के उदाहरण लें, जैसे– गणित में संक्रियाओं पर काम हुआ होगा, भाषा में लिखने-पढ़ने पर काम हुआ होगा और अब ये कक्षा दो या तीन के बच्चे कक्षा चार या पाँच में आ गए। सवाल यह है कि कक्षा 3 और 4 में उनके साथ जो काम होना था, जो समझ बननी थी, लगातार दो साल तक इनपर काम बिलकुल नहीं हुआ तो कक्षा 5 में उनसे ये उम्मीद करना कि कक्षा 3 और 4 की अवधारणा भी वो बताए तो मुझे लगता है, ये बच्चे के साथ नाइंसाफ़ी है। वो कक्षा 2 की अवधारणा को तो बता पाएगा लेकिन कक्षा 3 और 4 की अवधारणा नहीं बता पाएगा, दूसरा मुझे लगता है कि जब बच्चों के साथ लगातार किसी अवधारणा पर काम करते हैं तो उस अवधारणा पर काम करते हुए उनके साथ उन अवधारणाओं को अलग-अलग तरह से समझ बनाने और पुख़्ता करने की तमाम कोशिशें होती हैं जो अवधारणा को और मज़बूती प्रदान करती हैं। इस तरह के अभ्यास करने का समय भी इन दो साल में न शिक्षकों और न ही बच्चों को मिल पाया।

रजनी : दो साल में अपने साथियों के साथ बच्चों की जो अन्तःक्रिया होती गणित की, भाषा और अन्य विषयों की कक्षा में, और अपने शिक्षक व साथियों के साथ उस अन्तःक्रिया के फलस्वरूप उनको किसी एक अवधारणा के बारे में व्यापक रूप से जो समझने को मिलता, वह उन्हें नहीं मिला है। मसलन, तीन एक संख्या है, बच्चा बातचीत में ये सीखें कि तीन चार से एक छोटा होता है, तीन जो पाँच से दो छोटा होता है, या तीन दो से एक बड़ा होता है, या तीन तेरह से दस कम होता है, मतलब उस एक संख्या के बारे में काफ़ी सारी चीज़ें हैं जो सीखनी पड़ती हैं और बच्चे आपस में बातचीत में भी और शिक्षक से भी वह सीखते हैं। इस तरह के संवाद शिक्षकों और बच्चों के साथ कक्षा में हो नहीं पाए, इसलिए अवधारणाएँ जिस तरह से समझनी थीं उसमें कुछ रिक्तता आई ही है।

चित्र : हिमांशु खोले

कुछ सवाल व टिप्पणियाँ पढ़ना चाहूँगी। एक टिप्पणी है कि हम मज़दूर परिवार के बच्चों से ज़्यादा उम्मीद नहीं कर सकते क्योंकि माहौल का भी असर होता है। मज़दूर या वंचित परिवारों के बच्चों की ही बात नहीं है, किसी भी प्रकार के परिवार में इस तरह का माहौल हो सकता है कि कोई बच्चों के साथ अर्थपूर्ण बात करता है और कोई अर्थपूर्ण बात नहीं करता, और उस अर्थपूर्ण माहौल की ग़ैर-मौजूदगी में बच्चे कुछ सीखने से वंचित रह गए हों। ये किसी एक वर्ग की बात नहीं है। लेकिन अलग-अलग स्तर के हिसाब से, अलग-अलग तरह के एक्सपोज़र के हिसाब से बच्चों के सीखने में फ़र्क़ हुआ होगा, कुछ बच्चे सीखे होंगे, कुछ नहीं। जैसा ज़ुबेरजी ने अपनी टिप्पणी में कहा है कि समझ को समझना पड़ेगा कि बच्चे सवाल समझ गए हैं या घटाने और गुणा करने की विधि उनको याद है। जैसे– दो संख्याओं का जोड़ उन्होंने कर लिया पर तीन अंकों की संख्याओं के साथ वो नहीं कर पा रहे हैं, या चार अंकों की संख्याओं के साथ नहीं कर पा रहे हैं, तो क्या समझना रह गया है। ऐसा होता है कि बच्चे 23 और 24 को जोड़कर 47 लिख पा रहे हों, लेकिन अगली बार 25 और 25 जोड़ने के लिए दिया और उसने 410 लिख दिया। अब इसमें ये ही नहीं है कि बच्चे को हासिल वाली समझ नहीं आई है। इसमें बच्चे को 23 और 24 भी समझ नहीं आया है, और 25 भी समझ नहीं आया है। क्योंकि 23 और 24 की समझ में ये भी शामिल है कि बीस और तीन तेईस होते हैं एवं बीस और चार चौबीस, तो 23 और 24 को जोड़ने पर 47-48 जैसी संख्या मिलेगी। और 25 व 25 जोड़कर 410 जैसी संख्या नहीं मिल सकती। बच्चों के साथ में ठीक से काम करना चाहते हैं तो हमको समझना पड़ेगा कि उनको वास्तव में समझ में कहाँ दिक़्क़तें आ रही हैं, सिर्फ़ रिवीज़न करवाने से बात ज़्यादा बनेगी नहीं। एक और सवाल आनन्द का है, उन्होंने कहा है कि सीखने का क्षेत्र व्यापक है तो क्या हम केवल पाठ्यक्रम-आधारित लर्निंग लॉस की बात कर रहे हैं? वो कह रहे हैं कि हमने विषयों के पाठ्यक्रम की बात की, पर साथ ही बच्चे स्कूल नहीं गए तो एक दूसरे से बातचीत करना, एक दूसरे के साथ खेलना और ऐसी अन्य स्थितियों के दौरान जो सीखना है वह भी नहीं हो पाया। शुरुआत में जगमोहनजी ने भी कहा था कि अकादमिक के साथ-साथ सामाजिक और मनोवैज्ञानिक लॉस भी हुआ है। इस वेबिनार के अन्त की ओर बढ़ रहे हैं तो मैं संक्षिप्त में कुछ जोड़ने के लिए आप सभी से आग्रह करती हूँ।

बच्चे भूल गए हैं। दो साल में अपने साथियों के साथ उनकी जो अन्तःक्रिया होती गणित की, भाषा और अन्य विषयों की कक्षा में, और अपने शिक्षक व साथियों के साथ उस अन्तःक्रिया के फलस्वरूप उनको किसी एक अवधारणा के बारे में व्यापक रूप से जो समझने को मिलता, वह उन्हें नहीं मिला है।

सुनील : बहुत महत्त्वपूर्ण सवाल है। महामारी के जो तमाम प्रभाव समाज पर पड़े उनसे बच्चे अछूते नहीं हैं। स्कूल में पढ़ने-लिखने, विषयों को सीखने-सिखाने पर कैसे काम होगा, यह महत्त्वपूर्ण है ही लेकिन साथ-साथ जो बच्चों के व्यक्तित्व के सामाजिक-मानसिक पहलू हैं उनको व पूरे परिदृश्य को समझते हुए बच्चों के साथ काम करने की ज़रूरत है। विद्यालय में ऐसा माहौल बनाने की ज़रूरत है कि सभी बच्चे एक दूसरे की कैसे मदद कर सकते हैं, शिक्षक किस तरह रिक्तताओं को पाटने का काम कर सकते हैं, समुदाय और विद्यालय के बीच रिश्ते को कैसे
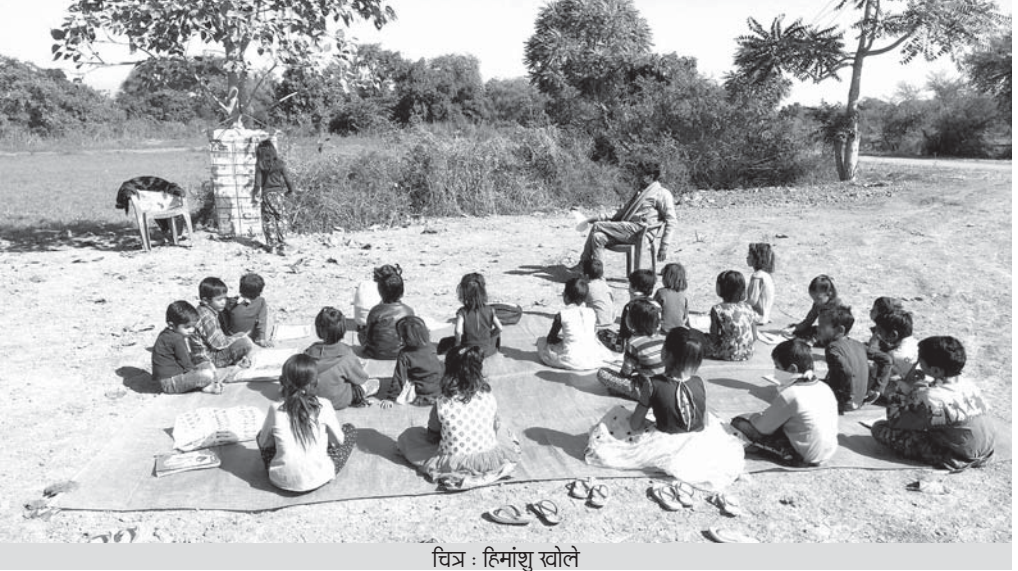
चित्र : हिमांशु खोले

गहरा कर सकते हैं, इन सब मुद्दों पर समेकित रूप से बात होनी चाहिए। इसीलिए लर्निंग लॉस की भरपाई का कोई शॉर्टकट नहीं हो सकता और दूसरा, इस रिकवरी का जो पूरा प्लान होना चाहिए वो बहुत ही कॉम्प्रिहेन्सिव होना चाहिए। कॉम्प्रिहेन्सिव का मतलब यह है कि हमें इसके पाठ्यक्रम स्तर पर भी काम करने की ज़रूरत है, और जो पेडागोजिकल अप्रोच हम लेना चाहते हैं उसके ऊपर भी काम करने की ज़रूरत है, जो हम असेसमेन्ट बच्चों का कर रहे हैं उस असेसमेन्ट को किस तरीक़े से व्यवस्थित करना है, किस तरीक़े से हम शिक्षक को फ़ीडबैक दें कि हम किस तरीक़े से बच्चों की बेहतरी के लिए आगे अपने काम को ले जा सकते हैं, तो एक पूरा कॉम्प्रिहेन्सिव प्लान बनाकर जब तक इसको एड्रेस नहीं करते तब तक मुझे लगता है कि हम लर्निंग लॉस की रिकवरी का कोई पक्ष छोड़ रहे होंगे। इसीलिए मुझे लगता है कि एक समग्र दृष्टि से इस बात को एड्रेस करने की ज़रूरत है।

रजनी : शुक्रिया सुनीलजी, और इसी के साथ आप सभी वक्ताओं और सभी दर्शकों का भी धन्यवाद।

पाठकों के विचार

अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित पत्रिका *पाठशाला भीतर और बाहर* का ग्यारहवाँ अंक प्राप्त हुआ। हमेशा की तरह तुरन्त ही इसके पन्ने पलटने शुरू कर दिए। यह अंक मेरे लिए इसलिए भी महत्त्वपूर्ण था क्योंकि गणित विषय मेरी रुचि और शिक्षण दोनों में हमेशा से रहा है। इस अंक में छपे अधिकतर लेख स्कूली स्तर के गणित शिक्षण की हमारी दृष्टि से प्रासंगिक हैं। मुझे मीनू पालीवाल का लेख 'मैडम, मेरा जवाब सही है!' बहुत ही उपयोगी लगा। उन्होंने कक्षा शिक्षण की प्रक्रिया को जिन चार उदाहरणों के माध्यम से समझाया है वह सराहनीय और वास्तविक हैं। हम बड़े बच्चों पर सिर्फ़ अपने विचार थोपने पर विश्वास करते हैं और बच्चों को सोचने व तर्क करने के अवसर नहीं देते हैं। इससे बच्चों की सीखने-सिखाने में सक्रियता कम होती चली जाती है और आत्म-विश्वास के अभाव में वे कक्षा शिक्षण में प्रतिभागिता करना बन्द कर देते हैं। मैं लेख में कक्षा शिक्षण के उदाहरणों से यह समझी हूँ कि शिक्षकों को बच्चों के प्रश्नों को पूरा सम्मान देना चाहिए और उनके प्रश्नों की दुविधा को कुछ हद तक शिक्षण सहायक सामग्री के द्वारा दूर करना चाहिए। बच्चे अगर प्रश्न करने लग जाएँ तो शायद उत्तर ढूँढ़ने में भी उनको कोई कठिनाई नहीं होगी और वे रटे-रटाए उत्तर देने की बजाय समझकर अपने तर्कपूर्ण उत्तर देने में सक्षम हो सकते हैं।
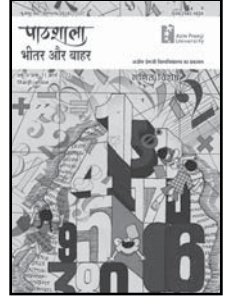
इस तरह के लेख प्रकाशित कर हम शिक्षकों को सीखने के अवसर उपलब्ध कराने के लिए *पाठशाला* टीम का शुक्रिया।

इन्दु पंवार, प्रधान अध्यापिका, राजकीय प्राथमिक विद्यालय गिरगाँव, पौड़ी गढ़वाल, उत्तराखंड

पाठशाला के ग्यारहवें अंक में छपा लेख 'मैडम, मेरा जवाब सही है!' वर्तमान शिक्षण परिस्थितियों के साथ बहुत प्रासंगिक है। लेख में मीनू पालीवाल ने अपने विद्यालयी अनुभवों को चार उदाहरणों के माध्यम से रखने का प्रयास किया है। जैसा कि नाम से ही समझ आता है कि लेख छात्रों के कुछ ऐसे जवाबों की तरफ़ इशारा करता है, जो हो सकता है शिक्षक की दृष्टि से ग़लत हों। किन्तु एक छात्र जो अभी अपने आसपास के वातावरण से अनुभव प्राप्त कर रहा है, उसके अनुभवों के आधार पर हो सकता है उसके अनुसार जवाब सही हों। अकसर ऐसा देखा जाता है कि एक सार्थक और आदर्श उत्तर की तलाश में शिक्षक छात्रों के अनुभव-आधारित उत्तरों को दरकिनार कर देते हैं, जबकि ऐसे सभी उत्तर एक समावेशी कक्षा के लिए बहुमूल्य सम्पदा का कार्य कर सकते हैं। लेखिका के इस लेख को पढ़ते वक़्त मुझे अपने बचपन की एक घटना स्मरण हुई जो इसी दिशा में इशारा करती है कि कैसे छात्रों के अनुभव-आधारित प्रश्न शिक्षक की दृष्टि में ग़लत हो जाते हैं।

एक शिक्षक या शिक्षाकर्मी के रूप में हमें छात्रों और उनके द्वारा दिए गए जवाबों के पीछे का कारण ज़रूर जानना चाहिए। सम्भव है कि छात्र के अनुभव अभी उस स्तर पर न हो पाए हों जिस

स्तर की अपेक्षा हम छात्र से रख रहे हैं। यह लेख हम सभी के बचपन की कई यादों को ताज़ा करने वाला है।

अनुराग तिवारी, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, कोटद्वार, पौड़ी, श्रीनगर, उत्तराखंड

गणित को कठिन विषय माना जाता है परन्तु *पाठशाला* पढ़ने के बाद प्रतीत हुआ कि कैसे हम बड़े और बच्चे भी गणित का उपयोग दैनिक जीवन में करने लग जाते हैं। *पाठशाला* के ग्यारहवें अंक में प्रकशित रुबीना खान और महेश झरबड़े द्वारा लिखित पहला आलेख 'जीवन में गणित' बताता है कि किस तरह बच्चे अपने दैनिक जीवन में गणित का उपयोग छोटे-छोटे कार्यों में करने लगते हैं। इसमें रुपए-पैसे मुख्य भूमिका में रहते हैं। हालाँकि वे उसे लिखने में इतने सक्षम नहीं होते हैं परन्तु गणित की विभिन्न संक्रियाओं, संख्या ज्ञान, अनुमान, परिकल्पना, नापना, वर्गीकरण, उपयोग, आदि में अच्छे से पारंगत होने लगते हैं।
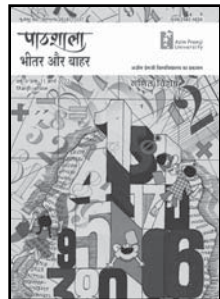
सन्दर्भित आलेख में दी गई गतिविधियाँ, चर्चाएँ, दिनचर्या, आदि इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हैं।

पेड़ काटा तो कहाँ गिरेगा, कितनी दूरी लेगा, पौधा लगाने के लिए कितना बड़ा गड्ढा, पेड़ की ऊँचाई, कितनी बड़ी रस्सी, कितने लोग, तो कितने दोने या गिलास, सब्ज़ी काटना, बड़ी या छोटी चादर का इस्तेमाल, आदि ऐसे कई उदाहरण लेख में दिए गए हैं जिनसे हम यह समझ सकते हैं कि यह बच्चों के गणितीय विकास में कितना महत्त्वपूर्ण रोल अदा करता है।

मगर इस आलेख को पढ़कर मुझे यह भी समझ आया कि यह ज़रूरी है कि गणित की पुस्तकों में भी ऐसे उदाहरणों के साथ कार्य हो ताकि बच्चे उसे जटिल या बोझिल न मानते हुए सरल तरीक़े से अपना सकें एवं पढ़ाई में सुगमता, सरलता व सहजता महसूस कर पाएँ।

ऋतु रानी शर्मा, प्रधानाध्यापक, राजकीय उच्च प्राथमिक विद्यालय, टीबा श्योपुर, सांगानेर, जयपुर, राजस्थान

तान्या सक्सेना का आलेख 'प्राथमिक स्तर से गणितीय सोच का विकास' पढ़कर लगा कि वास्तव में हमें प्राथमिक स्तर से ही बच्चों को परिवेश के साथ गणित से जोड़ना प्रारम्भ कर देना चाहिए और कक्षा में गणितीय तर्क क्षमता का विकास करना चाहिए।

इसी प्रकार सत्य नारायण का लेख 'उत्तर खोजना बनाम प्रश्न बनाना' मुझे काफ़ी महत्त्वपूर्ण लगा। लेखक का कविता या कहानी के द्वारा बच्चों में घुल-मिल जाना और बच्चों को चार लाइनें सुनाकर उनसे ही प्रश्न बनवाना बहुत ही कारगर तरीक़ा है बच्चों की सोच को विकसित करने का। यही बाल-केन्द्रित शिक्षा है। इसे मैं अपनी कक्षा में क्रियान्वित करना चाहूँगी।

शिक्षक लालाराम विश्वकर्मा का साक्षात्कार काफ़ी प्रेरणादायक है। एक शिक्षक के रूप में इनकी जीवन यात्रा को पढ़कर पता चला कि वे एक कर्मठ, अपने कार्यों के प्रति समर्पित, नवाचारों का सृजन करने वाले, सामाजिक, आसपास के परिवेश को प्रयोगशाला मानने और बनाने वाले भी एवं बाल शोध करने वाले एक कर्मयोगी शिक्षक हैं।

पाठशाला की 'संवाद' श्रृंखला में 'गणित में भाषा, संवाद और शिक्षक व विद्यार्थी के बीच बातचीत का महत्त्व' को पढ़कर काफ़ी सीखने-समझने को मिला। गणित में भाषा शिक्षण और शिक्षक का विद्यार्थी के साथ संवाद, सीखने-सिखाने की प्रक्रिया के लिए कितना आवश्यक है, इसकी समझ मज़बूत हुई।

सुमन जैन, अध्यापिका, राजकीय उच्च प्राथमिक विद्यालय, ग्वार ब्राह्मणान, सांगानेर, जयपुर, राजस्थान

पाठशाला के 11वें अंक में वैसे तो सभी लेख रुचिकर और महत्त्वपूर्ण लगे, परन्तु हृदयकान्त दीवानजी का लेख 'गणित क्यों और कैसे' ने मेरा ध्यान आकर्षित किया, क्योंकि अकसर मैं भी स्वयं से यही प्रश्न पूछती हूँ कि गणित से डर क्यों लगता है। लेख में लिखी बात बिलकुल सत्य है कि कक्षा-कक्ष में जिस तरह से गणित पढ़ाया जाता है और समाज द्वारा शुरुआत से ही हमारे मन-मस्तिष्क में यह भर दिया जाता है कि गणित विषय बहुत मुश्किल है। हृदयकान्तजी ने जिस प्रकार गणित सीखने को संगीत सीखने जैसा बताया है, वह बहुत रुचिकर लगा। गणित को हौवा न बनाकर बच्चे के जीवन से जोड़कर एक खोजबीन का विषय बनाया जाए और कुछ रोचक कार्य करके उसमें लगातार परिवर्तन करके देखते रहना और अपने जीवन में ढूँढ़ते रहना जहाँ वह स्कूल में सिखाए गए गणित को प्रयोग कर सके। शुरुआत से ही हम बच्चे को मूर्त से अमूर्त उदाहरणों में उलझाकर उसकी क्षमता को कम कर रहे होते हैं। जहाँ एक समय बच्चे को महसूस होने लगता है कि वह कुछ नहीं जानता है जबकि गणित के ऑब्जेक्ट वस्तुतः अमूर्त हैं। हमें बच्चे को अमूर्तता की ओर ले जाना है। गणित का अर्थ अवधारणाओं को समझना व उनमें सक्षमता हासिल करना है न कि ज्ञात बातों को याद रखना क्योंकि अकसर मॉडल या मूर्त चीज़ों के इस्तेमाल से हम बच्चे की क्षमता को, समझ को कम आँक कर उसे पीछे धकेलने का प्रयास करते हैं। बच्चा स्वयं प्रयास करे, यही सबसे महत्त्वपूर्ण है। इस लेख से गणित सीखने की प्रक्रिया को समझना काफ़ी आसान रहा।

कल्पना असवाल, सहायक अध्यापिका, रा आ उ प्रा वि लाटा, भटवाड़ी, उत्तरकाशी, उत्तराखंड

अशोक प्रसाद का लिखा लेख 'सन्दर्भों में निहित गणितीय सम्भावनाएँ' परिवेश में मौजूद सन्दर्भ और उनपर उपयुक्त बातचीत के गणित सीखने में महत्त्व पर केन्द्रित है।

लेख में बताया गया है कि गणित की अमूर्त अवधारणाओं को सन्दर्भों से जोड़कर और इनसे जुड़े प्रश्नों पर उपयुक्त बातचीत कर कैसे बच्चे चरणबद्ध तरीक़े से अपनी समझ बनाते हैं। लेख में छह साल की अपूर्वी से प्रश्न पूछा गया कि एक बाल्टी 8 मग से भर जाती है, एक मग 3 गिलास से भर जाता है तो बाल्टी कितने गिलास से भरेगी? अपूर्वी प्रश्न पर विचार करती है लेकिन कुछ समझ नहीं पाती, इसलिए वह प्रश्न को हल करने से साफ़ मना कर देती है। लेखक प्रश्न पर पुनः विचार करता है। वह प्रश्न की प्रकृति व प्रश्न में दी जानकारी के बीच सम्बन्धों को ढूँढ़ता है। शायद वह यह समझना चाहता है कि बच्ची को सवाल समझ में क्यों नहीं आया। वह दोबारा अपूर्वी से प्रश्न पूछता है और अबकी बार क्यों, कैसे और क्या जैसे सवालों से बातचीत की शुरुआत करता है। इस बार वह बातचीत में रुचि लेती है और जवाब ढूँढ़ने के लिए चिन्तन-मनन करने लगती है। वह प्रश्न को हल करने के लिए स्वयं के तरीक़े ढूँढ़ने लगती है, यहाँ तक कि प्रश्न में दी गई जानकारी को संकेतों से निरूपित कर उनके बीच तार्किक सम्बन्धों को स्थापित करने लगती है और अन्ततः प्रश्न का जवाब ढूँढ़ लेती है और उसकी व्याख्या भी करती है। लेखक आगे प्रश्नों की कठिनता का स्तर बढ़ाते हुए अन्य प्रश्नों पर भी अपूर्वी से चर्चा करता है।
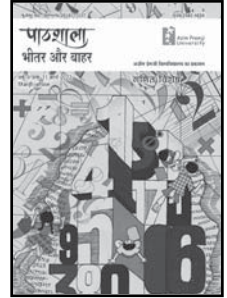
नरेश पंवार, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, पौड़ी, श्रीनगर, उत्तराखंड

सत्य नारायण द्वारा लिखित लेख 'उत्तर खोजना बनाम प्रश्न बनाना' बच्चों को ख़ुद से प्रश्न खोजने और प्रश्न निर्माण के मौक़े देने पर ज़ोर देता है। यह लेख उस परम्परा को भी इंगित करता है जहाँ पर हम वर्षों से चली आ रही प्रक्रिया को पोषित करते हैं, और इस परम्परा में पारंगत प्रत्येक व्यक्ति को विशेष होशियार समझने लगते हैं। हमारे स्कूल की परम्परा व शिक्षण प्रक्रियाओं में इसके उदाहरण

बख़ूबी देखने को मिलते हैं। यह परम्परा हमारे जीवन में इस प्रकार से घर कर गई है कि हमारे व्यक्तित्व, पठन-पाठन का मूल्यांकन भी इसी से किया जाता है, और वह परम्परा है 'उत्तर देना'।...

उत्तर देने वाले बच्चे, व्यक्ति, इंसान को होशियार समझा जाता है, किन्तु हम अपनी प्रक्रियाओं में इतने व्यस्त हो जाते हैं और भूल जाते हैं कि उत्तर देने से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है प्रश्न बनाना और प्रश्न पूछना।... उत्तर देना ज़्यादातर रटने की प्रक्रिया को बढ़ावा देता है जबकि प्रश्न पूछने में तार्किकता, विश्लेषण, अवलोकन, आदि सम्मिलित होता है। यह प्रक्रिया बच्चे को कुछ नया रचने का मौक़ा देती है और सृजनात्मकता के अवसर उपलब्ध करवाती है। यदि यह प्रक्रिया इतनी महत्त्वपूर्ण है तो इसपर ध्यान क्यों नहीं दिया जाता है? हमारी स्कूली परम्परा के केन्द्र व आकलन प्रक्रिया में उत्तर देना ही क्यों महत्त्वपूर्ण समझा जाता है? इन्हीं सब बातों, सवालों को खोजने व सोचने के मौक़े यह लेख देता है।

इसमें लेखक द्वारा बच्चों के साथ शुरुआत में सहज माहौल बनाया गया, कुछ कविताएँ-कहानियाँ सुनाई गईं, उनके साथ सहज होकर पहले स्वयं सवालों को बनाने की पहल की गई और उसके बाद बच्चों को प्रोत्साहित किया गया। शुरुआत में तो इस प्रक्रिया में काफ़ी चुनौतियाँ आईं किन्तु धीरे-धीरे बच्चे प्रश्न बनाने में पारंगत हो गए। अत: यह लेख उत्तर खोजने के साथ-साथ प्रश्न बनाने पर अधिक ज़ोर देता है।

मीमांशा गोदियाल, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, पौड़ी गढ़वाल, उत्तराखंड

हृदयकान्त दीवान द्वारा लिखित 11वें अंक का लेख 'गणित क्यों और कैसे' मुझे अपने काम के लिए उपयुक्त लगा।

इसे पढ़ने से पहले गणित विषय को मैं संख्या ज्ञान से ज़्यादा कुछ नहीं समझता था, या यूँ कहें बहुत संकीर्ण अर्थों में ही जानता था। परन्तु इस लेख ने गणित के व्यापक अर्थों को समझने में मेरी मदद की। इस लेख में लेखक ने 'गागर में सागर' भर दिया है। इतना सहज, सरल और स्पष्ट लेख, वह भी गणित विषय का, आज से पहले मैंने नहीं पढ़ा था। बुनियादी साक्षरता एवं संख्या ज्ञान पर प्रशिक्षण के दौरान जितने सवाल मेरे मन में उठे, उन सबके जवाब उदाहरण सहित मुझे इस लेख में मिले। प्रस्तुत लेख गणित को सोचने, समझने, तर्क, चिन्तन और हमारे विश्लेषण के कौशल को विकसित करने के तौर पर समझाता है। इसने मेरी इस समझ को विस्तार दिया कि गणित केवल किताब में ही नहीं होता, वरन् यह हमारे परिवेश और हमारी दिनचर्या का अभिन्न हिस्सा है। यहाँ तक कि जो बच्चे अभी स्कूल नहीं आए हैं, वह भी अपनी दिनचर्या में गणितीय सोच और कौशलों का इस्तेमाल करते हैं। इसे हर शिक्षक को ज़रूर पढ़ना चाहिए और अपने अभी तक के काम को इस लेख के आलोक में पुनर्विचार कर गणित के शिक्षण पर काम करना शुरू करना चाहिए।
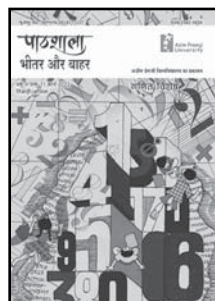
ओमप्रकाश विश्वकर्मा, प्रभारी प्रधानाध्यापक, शासकीय प्राथमिक शाला करईया गूजर, खुरई, सागर, म.प्र.

मीनू पालीवाल का आलेख 'मैडम, मेरा जवाब सही है!' पढ़कर मेरा नज़रिया एक शिक्षक होने के नाते बदला है। इसे पढ़कर समझ आया कि सवाल पूछना सीखने-सिखाने और ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया का स्वाभाविक व अहम हिस्सा है। कक्षा में इसकी जगह होनी ही चाहिए। हमें बच्चों की जिज्ञासाओं के प्रति सचेत रहने की आवश्यकता है। बच्चे जब अपने ही पूर्व ज्ञान के आधार पर एक दूसरे को उत्तर देते हैं या हमारे प्रश्न का उत्तर देते हैं तो हमें उन्हें प्रोत्साहित करना चाहिए।

बच्चे अगर प्रक्रिया के तहत सवाल पूछते हैं, विषयवस्तु पर अपनी समझ बनाते हैं, निर्णय देते हैं, पैमाने की बात करते हैं तो यह बहुत महत्त्वपूर्ण है कि बच्चों की उनके कार्यों में मदद की जाए। प्रश्न पूछने के कौशल को विकसित करने के लिए शिक्षण के दौरान आवश्यक गतिविधियाँ अपनाई जानी चाहिए। *पाठशाला* में प्रकाशित इस लेख ने मुझे बहुत प्रभावित किया।

जिस तरह से यह गणित विशेषांक निकाला गया है, मेरा निवेदन है कि अन्य विषयों से सम्बन्धित विशेषांक भी निकाले जाएँ।

विष्णु कुमार, प्रधानाध्यापक, राजकीय उच्च प्राथमिक विद्यालय, दहलावास, जयपुर, राजस्थान

रुबीना खान और महेश झरबड़े के लेख 'जीवन में गणित' में की गई चर्चा यक़ीनन ग्रामीण जीवन और मेहनतकश मज़दूर भाई-बहनों की गणितीय समझ के प्रति हम सबको नई दृष्टि देती है।

प्रकाश चन्द्र गौतम, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, बलौदा बाजार, छत्तीसगढ़

अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, भोपाल

द्वारा आयोजित संगोष्ठी

विद्यालयी शिक्षा में कला व शारीरिक शिक्षा : आवश्यकता, वर्तमान परिस्थितियाँ, सम्भावनाएँ व चुनौतियाँ

में भाग लेने के लिए आप सभी आमंत्रित हैं।

अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय 2017 से देश के अलग-अलग विश्वविद्यालयों के साथ मिलकर विद्यालयी शिक्षा से सम्बन्धित विषयों पर 'शिक्षा के सरोकार' शृंखला के अन्तर्गत भारतीय भाषाओं में संगोष्ठी का आयोजन करता रहा है। इस क्रम में अब तक हिन्दी, कन्नड़ और पंजाबी भाषाओं में विभिन्न मुद्दों पर संगोष्ठियाँ आयोजित की गई हैं।

इसी शृंखला की उक्त संगोष्ठी अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, भोपाल के कान्हासैय्या में नवनिर्मित परिसर में दिसम्बर, 2022 / जनवरी, 2023 में प्रस्तावित है।

संगोष्ठी का परिप्रेक्ष्य

कला शिक्षा व शारीरिक शिक्षा को हमेशा से ही शिक्षा का महत्त्वपूर्ण हिस्सा माना जाता रहा है। नीति एवं वैचारिक दस्तावेज़ों में भी रेखांकित किया जाता रहा है कि खेल व कला के सभी पहलू, बौद्धिक विकास एवं औपचारिक विषयों की अवधारणाओं की समझ के विकास में महती भूमिका अदा करते हैं। यह भी कि समाजीकरण की प्रक्रिया एवं भावनात्मक और संवेदनात्मक विकास में भी कला व खेलकूद की अहम भूमिका है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (एनसीएफ) 2005 और कला, संगीत, नृत्य और रंगमंच पर पोजीशन पेपर, दोनों ही दस्तावेज़, कला व कला-एकीकृत शिक्षा की वकालत करते हैं। ये दोनों दस्तावेज़ संगीत, नृत्य, दृश्य कला और थिएटर को एक अनिवार्य हिस्से (दसवीं कक्षा तक) के रूप में स्कूल पाठ्यक्रम में शामिल करने पर ज़ोर देते हैं। इसी तरह, शिक्षा में खेलों को एकीकृत करने की हिमायत करते हुए राष्ट्रीय खेल नीति 2001 खेलों एवं शारीरिक शिक्षा को शैक्षिक पाठ्यक्रम के साथ मिलाने तथा इसे सेकेण्डरी स्कूल तक शिक्षा का अनिवार्य हिस्सा बनाने और इसे विद्यार्थी की मूल्यांकन पद्धति में सम्मिलित करने की प्रतिबद्धता को दर्शाती है। नई शिक्षा नीति 2020 ने भी इसे अपनी वैचारिक समझ का प्रमुख हिस्सा माना है, और इसके महत्त्व को स्वीकार करते हुए यह नीति शिक्षा में भारतीय कलाओं, खेलकूद और संस्कृति को बढ़ावा देने पर ज़ोर देती है।

शारीरिक शिक्षा, खेलकूद व कला शिक्षा की स्कूल में जगह पर मंथन एवं संवाद की महती आवश्यकता है। यह समझने व विचार करने की आवश्यकता है कि यह क्यों महत्त्वपूर्ण है, नीति दस्तावेज़ इनके बारे में क्या कहते हैं, स्कूलों व शिक्षा व्यवस्था के अन्य हिस्सों में इसका क्या स्थान है व आज इसकी स्थिति क्या है, इन्हें शामिल करने के लिए किस-किस तरह के व्यवस्थित अथवा प्रयोगात्मक छोटे-छोटे प्रयास हुए हैं, इन सबके क्या अनुभव रहे हैं व इनके आलोक में आगे बढ़ने का क्या रास्ता हो सकता है और इनके ज़्यादा गम्भीरता से शामिल होने में प्रमुख अड़चनें किस प्रकार की हैं (आर्थिक हैं, व्यवस्थागत हैं, सामाजिक हैं, सांस्कृतिक हैं आदि-आदि)।

यह संगोष्ठी इन सभी मसलों के इर्द-गिर्द संवाद को बढ़ावा देने के लिए है। इस सन्दर्भ में कुछ उपविषय इस तरह हो सकते हैं :

अ. स्कूली शिक्षा में कला / सौन्दर्यशास्त्र के आयामों की मौजूदगी... क्यों ?

1. स्कूलों में खेल व कला शिक्षा : दस्तावेज़ों में उनके प्रति दृष्टिकोण व उसका विकास / कला और खेल शिक्षा– परिप्रेक्ष्य
2. इंसान के विकास और गहराई से सीखने में कला और खेल शिक्षा का योगदान
3. ज्ञान के एक हिस्से के रूप में कला और खेलकूद व शारीरिक शिक्षा
4. कला शिक्षा और खेल शिक्षा के सन्दर्भ में हुए प्रयोग
5. कला शिक्षा और खेल शिक्षा की मौजूदा स्थिति व सम्भावनाएँ
6. कला शिक्षा और खेलकूद : जेंडर, विशेष क्षमता वाले बच्चे, सभी की भागीदारी

आ. पूर्व प्राथमिक और प्राथमिक स्तर पर कला और खेल शिक्षा

1. सभी विद्यार्थियों में शिक्षा के प्रति दिलचस्पी पैदा करने और उनके लिए शिक्षा को अर्थपूर्ण बनाने में इनकी भूमिका
2. पूर्व प्राथमिक और प्राथमिक स्तर के लिए कला व खेल शिक्षा का दृष्टिकोण व स्वरूप
3. विषयों की चारदीवारी और कला शिक्षा व खेलकूद

इ. उच्च प्राथमिक और माध्यमिक स्तर की कक्षाओं में कला और खेल

1. कला और खेल का अन्य विषयों के साथ समेकन/अन्तरसम्बन्ध : नवाचार, प्रतिफल, चुनौतियाँ और सम्भावनाएँ
   (अ) इस स्तर पर विषयों के शिक्षण में कला की जगह
   (ब) कला व खेलों और विषय शिक्षण से इनका जुड़ाव
2. कला और खेलकूद शिक्षण के लिए पाठ्यक्रम निर्धारण : मौजूदा स्थिति, चुनौतियाँ और सम्भावनाएँ
3. माध्यमिक स्तर के लिए कला व खेल शिक्षा का दृष्टिकोण व स्वरूप

ई. शिक्षक प्रशिक्षण : वर्तमान स्थिति, चुनौतियाँ, सम्भावनाएँ

1. कला शिक्षा व खेलकूद : शिक्षकों की तैयारी
2. सामान्य शिक्षा महाविद्यालयों में कला और खेल के लिए तैयारी की सम्भावनाओं का विश्लेषण
3. कला शिक्षा और खेलकूद : स्कूलों की तैयारी

संगोष्ठी में भाग लेने की प्रक्रिया

संगोष्ठी हिन्दी में होगी। प्रस्तुत किए जाने वाले आलेख हिन्दी भाषा में ही अपेक्षित हैं। संगोष्ठी में इनका प्रस्तुतिकरण और उन पर चर्चा भी हिन्दी में ही होगी।

संगोष्ठी में भाग लेने के लिए आपको अपने प्रस्तावित पर्चे / शोध आलेख का एक 'एब्स्ट्रैक्ट' भेजना होगा। यहाँ 'एब्स्ट्रैक्ट' से आशय है कि आपके पर्चे / शोध आलेख का विषय क्या होगा? पर्चे का ढाँचा क्या होगा, दूसरे शब्दों में जो भी विचार आप लेख में प्रस्तुत करना चाहेंगे वे विचार क्या होंगे और मोटेतौर पर वे किस तरह से व्यवस्थित होंगे। यदि आप उक्त में से किसी चयनित विषय या उससे सम्बन्धित विषय पर बच्चों के साथ या शिक्षकों के साथ काम करेंगे तो संक्षिप्त में यह भी बताएँ कि क्या काम करेंगे और इसकी प्रक्रिया क्या होगी। इसके साथ ही 'एब्स्ट्रैक्ट' में आप जिन सम्भावित दस्तावेज़ों, पुस्तकों, पाठ्यपुस्तकों को सन्दर्भित करना चाहेंगे, उनका ज़िक्र भी करें।

आप अपने प्रस्तावित पर्चे का 'एब्स्ट्रैक्ट' 15 जुलाई, 2022 तक भेज सकते हैं। 'एब्स्ट्रैक्ट' 500 से 800 शब्दों तक का हो सकता है। कृपया 'एब्स्ट्रैक्ट' के अन्त में अपना संक्षिप्त परिचय, ई-मेल, डाक का पता तथा फ़ोन नम्बर का उल्लेख अवश्य करें। जहाँ तक सम्भव हो 'एब्स्ट्रैक्ट' वर्ड फ़ाइल में यूनीकोड में भेजें। साथ ही इस फ़ाइल की एक पीडीएफ भी भेजें।

अपने 'एब्स्ट्रैक्ट' seminar.artssportseducation@gmail.com पर भेजें।

'एब्स्ट्रैक्ट' संगोष्ठी की अकादमिक समिति द्वारा देखे जाएँगे। जिन 'एब्स्ट्रैक्ट' पर आगे काम किए जाने की सम्भावना होगी वे टिप्पणियों और सुझावों के साथ सम्बन्धित लेखकों से ई-मेल के ज़रिए साझा किए जाएँगे। 'एब्स्ट्रैक्ट' स्वीकृत होने के बाद आप पूर्ण आलेख लिखना आरम्भ कर सकते हैं। पूर्ण आलेख भी उक्त ई-मेल पते पर ही भेजा जाना है और अधिक जानकारी के लिए भी आप ऊपर दिए गए ई-मेल पर लिख सकते हैं।

लेखकों से आग्रह

पाठकों से प्राप्त सुझाव के आधार पर *पाठशाला भीतर और बाहर* में छपने वाले लेखों की प्रकृति, स्वरूप और प्रस्तुति में कुछ परिवर्तन किए गए हैं। प्रयास है कि पत्रिका ज़मीनी स्तर पर काम कर रहे साथियों के लिए अपने अनुभवों को दर्ज करने, उनको विस्तार देने और गहराई देने के लिए एक उपयुक्त मंच बने और साथ ही इन अनुभवों को साझा करने का भी। इसी तरह यह ज़मीनी स्तर पर होने वाले कार्य की दृष्टि से अर्थपूर्ण व कार्य में मददगार भी बन पाएगी। और व्यापक पाठक वर्ग सहित आप व हमारे शिक्षक साथी इसे पढ़ेंगे और इसका अधिकाधिक उपयोग कर पाएँगे।

आपसे आग्रह है कि आप अनुभवों को दर्ज कर पत्रिका में छपने के लिए भेजें। आप स्कूल में, कक्षा में, और अलग–अलग मंचों पर शिक्षकों के साथ किए गए काम के अनुभवों को भेज सकते हैं। आपके साथी शिक्षक भी उनके द्वारा किए गए काम के अनुभवों को भेज सकते हैं। आपके द्वारा भेजे गए लेख बच्चों के सीखने–सिखाने से सम्बन्धित हो सकते हैं, जैसे– विभिन्न विषयों या प्रकरणों को सीखने–सिखाने के अनुभव या फिर शिक्षकों के साथ अन्तर्क्रिया के नए तौर–तरीकों पर केन्द्रित या फिर किसी महत्त्वपूर्ण या उल्लेखनीय संवाद के बारे में जो औरों के लिए भी उपयोगी हो। इनके और बहुत–से उदाहरण हो सकते हैं। जैसे– बच्चों के साथ काम के सन्दर्भ में गणित, विज्ञान, भाषा, सामाजिक अध्ययन, आदि किसी भी विषय की किसी भी कक्षा के अनुभव। ये अनुभव किसी अवधारणा को बच्चों को सिखाने, उन्हें गतिविधियाँ कराने या उनके साथ खेल खेलने आदि के हो सकते हैं।

आप, स्कूल और शिक्षकों के साथ (इसमें एंगेज्ड शिक्षक भी शामिल हैं) जो काम कर रहे हैं, उससे सम्बन्धित लेख भी साझा कर सकते हैं। इसमें आपने जो किया उसके साथ–साथ आप अपने काम में किस ख़ास तरह से आगे बढ़े और वह आपने क्या सोचकर किया, इस विचार को शामिल कर सकते हैं। इस दौरान आप अपने काम के सकारात्मक नतीजे व उसमें दिखने वाले गैप भी बताएँ, जैसे– बाल सभा या बाल शोध मेलों में कुछ परिवर्तन किया, तो वह क्या सोचकर किया, उसका क्या नतीजा निकला और बेहतर करने के लिए उसमें और क्या–क्या किया जा सकता है, आदि? इसी तरह कक्षा में बच्चों को चित्रकला करवाने, कहानी सुनाने या किसी नाटक में भाग लिया, तो उसके बारे में क्या अनुभव रहे, यह बता सकते हैं। गणित का एक उदाहरण शिक्षण सामग्री जैसे– गिनमाला का प्रयोग करके गिनती सिखाने का हो सकता है। इसी तरह वालंटरी टीचर फ़ोरम, टीचर लर्निंग सेंटर, समर–विंटर कैम्प के शैक्षिक प्रयासों आदि के बारे में भी मननशील लेख हो सकते हैं। ये लेख पाठक को यह समझने में मदद करें कि उनमें क्या प्रयास था, किस परिस्थिति में उसे सोचा गया, कैसे किया गया, क्या हो पाया, क्या कमी रही, क्या सीखा और आगे के लिए आपके समूह के लिए और पाठकों के लिए उसके क्या निहितार्थ हैं?

इसी तरह, शिक्षकों के साथ प्रशिक्षण के दौरान, वालंटरी टीचर फ़ोरम में कार्य के दौरान, टीचर लर्निंग सेंटर पर हो रहे प्रयासों में, या उनके साथ सहकारी शिक्षण के दौरान हुए अनुभवों को मननशील व समालोचनात्मक दृष्टिकोण से लिखकर भेजें तो अच्छा रहेगा। इसी तरह बच्चों अथवा शिक्षकों के साथ कक्षा के बाहर हुए सार्थक अनुभव भी आप मननशील ढंग से लिख सकते हैं।

लेखों के विषय और विषयवस्तु ऐसी हो जिससे फ़ील्ड में कार्य करने वाले साथियों और शिक्षकों को वैचारिक मदद मिलती हो और उनका दक्षता संवर्धन होता हो। लेख ऐसे हों जो स्कूल व कक्षा में पढ़ने–पढ़ाने के तरीक़ों व अन्य गतिविधियों में शिक्षकों व फ़ाउण्डेशन के साथियों द्वारा इस्तेमाल किए जा सकें। साथ ही ऐसे लेख भी हों जिनसे विविध विषयों एवं उनमें बुनी अवधारणाओं को पढ़ाने में मदद मिले और उनकी भाषा व विषय सामग्री अधिक–से–अधिक सदस्यों को आसानी से समझ में आने वाली हो।

यदि लेख में दिए गए किसी विवरण, चर्चा अथवा व्याख्या से सम्बन्धित किसी तर्क अथवा प्रमाण के लिए किसी पुस्तक, जरनल या वेब स्रोत से कोई सामग्री ली गई हो तो उसका उल्लेख ज़रूर करें। आप जो भी सन्दर्भ सामग्री लें उससे लेख को अर्थपूर्ण, तार्किक और गुणवत्तापूर्ण बनाने में मदद मिले।

इसके अलावा आप शिक्षा से सम्बन्धित किसी पुस्तक, फ़िल्म अथवा अन्य शिक्षण सामग्री के बारे में भी लिख सकते हैं, मसलन उनका परिचय, समीक्षा अथवा विश्लेषण।

आशा करते हैं कि आपके यह लेखकीय अनुभव ठोस एवं यथार्थपरक होंगे। उनमें कुछ ऐसा ज़रूर हो जो पाठक को रुचिपूर्ण व सार्थक लगे।

लेखकों को अपने लेखन के सन्दर्भ में किसी भी तरह के सहयोग की आवश्यकता महसूस होती है तो वे इसके लिए सम्पर्क कर सकते हैं। उन्हें सम्पादक मण्डल के सदस्यों द्वारा आवश्यक सहयोग और सुझाव दिए जाएँगे। उम्मीद है कि *पाठशाला भीतर और बाहर* का यह बारहवाँ अंक आपको अच्छा लगेगा और आप इसके अगले अंकों के लिए ज़रूर लिखेंगे। पत्रिका के इस अंक पर आपकी टिप्पणियों व सुझावों का हमें हमेशा की तरह इन्तज़ार रहेगा।

अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय की अन्य पत्रिकाएँ